पंजीयन संख्या : 68939/98

ज्ञान तत्व

सत्यता एवं निष्पक्षता का निर्भीक पाक्षिक

MAY 2025
अंक - 10

470

महिला पुरूष संबंध और सुप्रीम कोर्ट का निर्णय 3

"...स्त्री-पुरुष के अनियंत्रित संबंध समाज में अव्यवस्था पैदा करते रहे हैं और भविष्य में भी करते रहेंगे। ये संबंध सिर्फ शारीरिक संबंध मात्र तक सीमित नहीं होते। इनका जन्म से मृत्यु तक पारिवारिक और सामाजिक संबंध भी है।..."

महिला आरक्षण समाधान या समस्या ? 4

महिला वर्ग या परिवार का अंग 6

प्रकाशन की तिथि - 01--5-2025 पोस्ट की तिथि - 15--5-2025

सिंहावलोकन

7 **- महिला पुरुष सम्बन्धों पर मेरे कुछ विचार -**

8 **नई समाज व्यवस्था**

9 **न्यायपालिका और संविधान**

वर्तमान भारत में संविधान गुलाम है। हमारे संसद और न्यायपालिका, संविधान पर कब्जा करने की लड़ाई लड़ रहे हैं।

11 **हिन्दू मुस्लिम सम्बन्ध**

12 **राजनैतिक चर्चा**

13 **ज़ूम चर्चा कार्यक्रम का सारांश**

14 **जीवन पथ (उपन्यास)**

पत्र व्यवहार का पता

बजरंग लाल अग्रवाल पोस्ट बाक्स 15, रायपुर (छ.ग.) 492021

website : margdarshak.info

प्रकाशक, संपादक व स्वामी - बजरंगलाल

9617079344

mail : Support@margdarshak.info

ज्ञान केन्द्र विचार, समन्वय और परिवर्तन के तीर्थ

महिला पुरूष संबंध और सुप्रीम कोर्ट का निर्णय

बजरंग मुनि
प्रधान संपादक

पूरी दुनिया में आदर्श व्यवस्था वह होती है जिसमें व्यक्ति, परिवार, राज्य और समाज के अधिकारों का संतुलित विभाजन हो। दुनिया में जहां कहीं भी इस अधिकार संतुलन को अस्वीकार करके व्यक्ति जाति, धर्म और राज्य के अधिकार विभाजन को स्वीकार किया गया, उन सभी देशों में अशान्ति और अव्यवस्था अवश्यंभावी है। अब तक पूरी दुनिया में आदर्श व्यवस्था तो स्थापित नहीं हो सकी, किन्तु भारत एक प्रत्यक्ष उदाहरण है जहां पूरी तरह अशान्ति और अव्यवस्था छायी हुई है। हम भारत की इस अव्यवस्था को सुधारने का प्रयास करते रहते हैं, किन्तु व्यवस्था बिगड़ती ही जा रही है क्योंकि असंतुलन का आधार भारतीय संविधान का वह स्वरूप है जो मूल रूप से व्यक्ति, परिवार, राज्य और समाज के आधार पर न बनकर व्यक्ति, जाति, धर्म और राज्य के रूप में बना। अर्थात् संविधान से परिवार और समाज को बाहर निकालकर जाति और धर्म को शामिल कर दिया गया। यह भूल किसने की, क्यों की, परिणाम क्या हुआ आदि विषय तो इस लेख से भिन्न हैं, किन्तु भूल हुई यह निर्विवाद है और इस भूल को ठीक किए बिना किसी सुधार के लक्षण नहीं दिख सकते।

ऐसे ही संकट काल में कुछ वर्ष पहले सुप्रीम कोर्ट ने एक साधारण सा प्रभावकारी दिखने वाला महत्वपूर्ण फैसला सुनाया था कि किसी बालिग स्त्री-पुरूष के लिए एक साथ रहने में विवाह की धार्मिक या कानूनी अनिवार्यता आवश्यक नहीं है। इसके पूर्व महाराष्ट्र सरकार ने भी कुछ ऐसा ही विचार व्यक्त किया था। सुप्रीम कोर्ट के निर्णय में दो भाग हैं: 1. बिना विवाह के एक साथ रहना किसी भी कानून के अंतर्गत अपराध नहीं है, 2. यह संबंध अनैतिक भी नहीं है क्योंकि राधा और कृष्ण भी बिना विवाह के साथ रहते थे। सुप्रीम कोर्ट के निर्णय का पहला भाग निष्कर्ष रूप में है और दूसरा उदाहरण रूप में। फिर भी विचारणीय तो दोनों हैं ही। समाज में दो विपरीत विचार पैदा हुए: 1. सुप्रीम कोर्ट का निर्णय अनुचित है क्योंकि इस तरह परिवार व्यवस्था को तोड़ देने से समाज में अव्यवस्था फैल जाएगी, 2. फैसला ठीक है क्योंकि बालिग स्त्री-पुरुषों के निर्णय की स्वतंत्रता में कोई बाधा क्यों हो?

स्त्री-पुरुष के अनियंत्रित संबंध समाज में अव्यवस्था पैदा करते रहे हैं और भविष्य में भी करते रहेंगे। ये संबंध सिर्फ शारीरिक संबंध मात्र तक सीमित नहीं होते। इनका जन्म से मृत्यु तक पारिवारिक और सामाजिक संबंध भी है। इस संपर्क के परिणाम स्वरूप ही भविष्य में संतान पैदा होती है। यदि स्त्री-पुरुष संबंध अव्यवस्थित होंगे तो संतान के लालन-पालन, शिक्षा-दीक्षा पर भी प्रभाव पड़ेगा। परिवार व्यवस्था के टूटने से वृद्ध सदस्यों के मामलों में भी दिक्कत आनी ही है। परिवार व्यवस्था को तोड़कर पूर्ण स्वतंत्रता के बहुत ज्यादा दुष्परिणाम होंगे ही। शायद न्यायालय ने इस पक्ष पर गौर नहीं किया। मेरा विचार है कि स्त्री-पुरुष संबंधों में पूर्ण स्वतंत्रता को निरूत्साहित करना चाहिए। किन्तु इन मामलों में कानून का हस्तक्षेप तो और भी ज्यादा घातक होता है क्योंकि राज्य ऐसा करने में न समर्थ है, न हो सकता है और कानून की मंशा भी समाज व्यवस्था को मजबूत बनाने की न होकर कमजोर करने की रही है। राज्य समाज का सहायक तो हो सकता है, परन्तु विकल्प नहीं बन सकता। पुराने जमाने में समाज मजबूत था और राज्य का हस्तक्षेप लगभग शून्य था, तब परिवार व्यवस्था इतनी छिन्न-भिन्न नहीं थी जितनी आज है। राज्य ने सब काम अपने जिम्मे लेकर समाज व्यवस्था को तो शिथिल कर दिया और खुद उससे संभल नहीं रहा है। राज्य यदि विवाह और स्त्री-पुरुष संबंधों पर अपनी इतनी ताकत खर्च करेगा, तो चोरी, डकैती, मिलावट और बलात्कार कौन रोकेगा? एक ऐसी मरियल राज्य व्यवस्था जिसके नख से शिख तक भ्रष्टाचार ही भ्रष्टाचार व्याप्त है, वह स्त्री-पुरुष संबंधों को संतुलित बनाए रखने का दायित्व भी ले ले, यह उसकी बदमाशी ही मानी जाएगी क्योंकि न वह मरियल व्यवस्था अपराध रोक पाएगी, न ही स्त्री-पुरुष संबंध ठीक कर पाएगी।

मेरे विचार में सुप्रीम कोर्ट का फैसला बिल्कुल ठीक है। राज्य ने अनावश्यक हस्तक्षेप कर-करके इस व्यवस्था को ही अव्यवस्थित कर दिया था। विवाह की उम्र, दहेज का लेन-देन, स्त्री-पुरुष आबादी का असंतुलन, महिला उत्पीड़न, महिला हीन भावना निवारण, आदि हजारों कानून बना-बना कर परिवार व्यवस्था का कानूनों ने कचूमर निकाल दिया था। निकम्मे कानून अपनी श्रेष्ठता स्थापित करने के लिए और कानून बनाते थे। ये कानून समाज को और अधिक गुलाम बनाने में तो सफल होते थे, किन्तु समाज में व्यवस्था बनाने में सफल कभी न हुए हैं, न होंगे क्योंकि कानून कभी समाज व्यवस्था के विकल्प नहीं हो सकते। कानून बीमारी की दवा हैं, टानिक नहीं। दुर्भाग्य से दवा ही अपने को टानिक समझने लगी है। दवा के साइड इफेक्ट को तो टानिक कम कर सकता है, किन्तु टानिक का साइड इफेक्ट कौन ठीक करेगा? राज्य सामाजिक मामलों में नित नए-नए हस्तक्षेप के कानून बना-बना कर साइड इफेक्ट के रूप में भ्रष्टाचार का समुद्र पैदा कर रहा है। इसका समाधान कौन करेगा?

मैं तो पचास-साठ वर्ष पूर्व से ही लगातार लिखता रहा हूँ कि परिवार के पारिवारिक और समाज के सामाजिक मामलों में सरकार को कोई कानून नहीं बनाना चाहिए। मेरे विचार में स्त्री-पुरुष संबंध भी ऐसे मामलों में शामिल रहा है जो कानून के हस्तक्षेप से बाहर रहना चाहिए। इतने वर्षों बाद न्यायालय ने लिव इन रिलेशनशिप आदेश देकर पहल की है। न्यायालय ने जो फैसला दिया, वह क्या सोचकर दिया, यह मुझे नहीं पता, किन्तु इस फैसले का दूरगामी प्रभाव होगा। सरकार के सैकड़ों अनावश्यक कानून प्रभावहीन हो जाएंगे। बाल विवाह का कानून महत्व खो देगा। न बालिग लड़के-लड़की बिना विवाह किए साथ रहेंगे, तो आपका कानून क्या करेगा? संतानोत्पत्ति का लेखा-जोखा भी कठिन होगा। भ्रूण हत्या भी प्रमाणित करना आसान नहीं होगा। अनिवार्य विवाह पंजीकरण कानून भी धूल चाटता नजर आएगा। तलाक के जटिल कानूनों से भी मुक्ति मिलेगी, वैश्यावृत्ति संबंधी कानून भी धीरे-धीरे प्रभावहीन हो जाएंगे। पारिवारिक संपत्ति के बटवारे के भी नए नियम बनाने होंगे। धीरे-धीरे पता चलेगा कि कहां-कहां और कितना प्रभाव होगा, किन्तु होगा अवश्य, इतना निश्चित है और जो भी होगा, वह समाज में भले ही थोड़ी सी उच्श्रृंखलता बढ़ाए, किन्तु राज्य की गुलामी से तो मुक्ति अवश्य दिलाएगा।

न्यायालय के इस निर्णय का बहुत व्यापक विरोध नहीं हुआ क्योंकि तथाकथित धर्म गुरुओं या चरित्र के ठेकेदारों को इसके दूरगामी प्रभाव का आभास ही नहीं हुआ। मीडिया ने भी इसे ज्यादा नहीं उछाला। अंग्रेजी शब्द होने से वैसे भी सामान्य लोगों को कम समझ में आया। एक बात और है कि नासमझ धर्म गुरुओं ने धारा 370 के हटाने पर भरपूर विरोध करके अपनी ताकत आजमा ली थी। वह भी तो ऐसा ही मामला था। वहीं से थक-थका कर ये इतने पस्त थे कि इस मामले से दूर ही रहना ठीक समझा। संघ परिवार उठाता तो वह अभी अन्य कार्यों में व्यस्त है। रामदेव जी भी राजनीतिक उठा-पटक में ही लगे हैं। इसलिये यह मामला तूल नहीं पकड़ा। राजनेताओं को अब तक आभास ही नहीं है कि इस निर्णय का इतना दूरगामी परिणाम होगा। वे तो लिव इन रिलेशनशिप मात्र ही मानकर चल रहे हैं। किन्तु उन्हें जब पता चलेगा कि इस फैसले से उनके कानूनी हस्तक्षेप में कमी आएगी तथा सामाजिक गुलामी कम होगी, तो वे अवश्य कोई न कोई तिकड़म करेंगे। सैकड़ों वर्षों से समाज को गुलाम बनाने के प्रयासों को वे इतनी आसानी से ध्वस्त नहीं होने देंगे। अभी तो सुगबुगाहट नहीं है, किन्तु आगे क्या होगा, यह पता नहीं। यदि कोई धार्मिक सामाजिक संगठन आगे आया, तब तो नेता इसे अवश्य ही उठा लेगा, इतना निश्चित है। क्योंकि ये नेता और धर्म गुरु किसी न किसी तरह समाज को समझाने में सफल हो सकते हैं कि इस फैसले से परिवार व्यवस्था और समाज व्यवस्था टूटेगी, जबकि सच्चाई इसके ठीक विपरीत है।

भारत की परिवार व्यवस्था और समाज व्यवस्था को तोड़ने में कानून और राज्य ने ही सारी पहल की है। यदि भारत पर ऐसा रद्दी संविधान न थोपकर कोई ऐसा संविधान बनाया जाता जिसमें परिवार व्यवस्था, गांव व्यवस्था, समाज व्यवस्था में कानूनों का न्यूनतम हस्तक्षेप होता, तो ऐसी अव्यवस्था नहीं होती जैसी आज है। हुआ यह कि अंग्रेजों के कार्यकाल में महापुरुषों का समाज पर प्रभाव घटता गया। राजनीतिक सत्ता के दलाल महापुरुष का खिताब पा कर सरकार से कानूनों की मांग करने लगे और सरकार नए-नए कानून थोपने लगी। स्वतंत्रता के बाद तीन महापुरुषों से कुछ उम्मीदें बंधी थीं: 1. संत विनोबा भावे, 2. श्री राम शर्मा, 3. बाबा रामदेव। विनोबा जी का नाम प्रभावहीन हो गया है, श्री राम शर्मा जी रहे नहीं और रामदेव जी स्वयं ही व्यापारी बनने की राह पर चल पड़े, तो सोचिए कि राज्य के निष्कंटक होने में बाधा क्या है?

मैं जानता हूँ कि सरकारें और प्रभावहीन धर्मगुरू इतनी आसानी से मानेंगे नहीं। आज भी अनेक छोटे-मोटे धर्म गुरु इस प्रकार के कानूनों के पक्ष में आवाज उठाते रहते हैं, किन्तु अब समाज को भी जागरूक बनाने की जरूरत होगी। समाज को समझाना होगा कि सामाजिक अव्यवस्थाओं के परिणाम स्वरूप राजनीतिक हस्तक्षेप नहीं बढ़ा है, बल्कि इसके उलट सच्चाई यह है कि कानूनी हस्तक्षेप के परिणाम स्वरूप सामाजिक अव्यवस्था बढ़ी है। सरकार के हटने से होने वाला नुकसान उतना बड़ा नहीं है जितना सरकारी हस्तक्षेप से होने वाला नुकसान। इस एक न्यायालयीन निर्णय ने समाज सशक्तिकरण की संभावनाएं जागृत कर दी हैं। उच्श्रृंखलता और गुलामी के बीच गुलामी अधिक घातक है और यदि गुलामी के बाद भी उच्श्रृंखलता न रुके, तो ऐसी गुलामी को तो तत्काल ही त्याग देना चाहिए। उच्श्रृंखलता का भय दिखाकर राजनीतिक दलाल हमें गुमराह करेंगे, किन्तु हमारा कर्तव्य है कि हम सतर्क रहें।

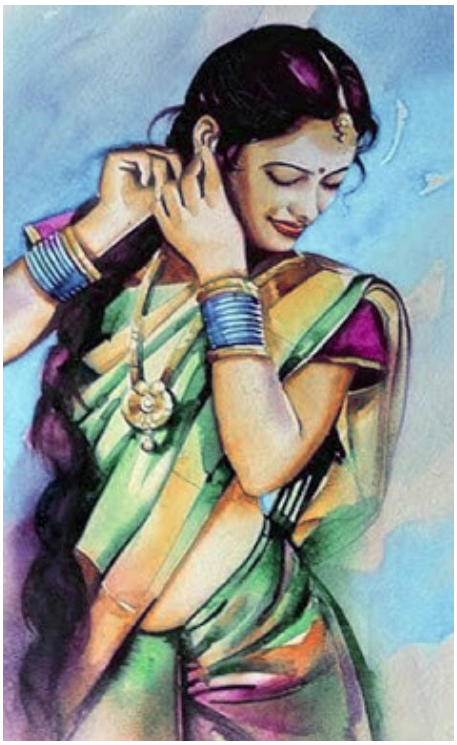

महिला आरक्षण समाधान या समस्या ?

किसी भी समस्या के समाधान के पूर्व समस्या की पहचान, कारण, समाधान के लाभ और हानि की समीक्षा स्वाभाविक है। महिला आरक्षण के विषय पर भी देश भर में समीक्षा हो रही है।

सिद्धांत रूप में आरक्षण घातक होता है। हजारों वर्ष पूर्व परिवार में पुरुष प्रधानता आरक्षण के रूप में स्थापित हुई और उस प्रधानता ने समाज में भी पुरुष प्रधान व्यवस्था का स्वरूप ग्रहण कर लिया। महिला और पुरुष दो वर्ग के रूप में स्थापित होने लगे। महिलाओं की क्षमता और योग्यता की सीमाएं निर्धारित हुईं, जो पुरुषों द्वारा अपने पक्ष में बनाई गईं। दुष्ट प्रवृत्ति पुरुषों द्वारा ऐसी पुरुष प्रधानता का दुरुपयोग स्वाभाविक था। दुष्ट प्रवृत्ति पुरुषों ने इसका लाभ भी खूब उठाया। इस्लाम में तो ऐसे एकपक्षीय नियम ही बना दिए गए कि परिवार में मालिक पति होगा, किंतु हिंदुत्व में भी पुरुष मुखिया की व्यवस्था मालिक से कोई बहुत कम नहीं रही।

इस समाज व्यवस्था को तोड़ने के नाम से महिला उत्पीड़न रोकने के अनेक कानून बने। महिला आरक्षण प्रयास उसी की एक कड़ी है। निसंदेह ऐसे प्रयत्नों से पुरुष प्रधान व्यवस्था टूटेगी और महिलाओं को आगे आने का अवसर मिलेगा। किंतु विचारणीय प्रश्न यह भी है कि इन प्रयत्नों का संपूर्ण समाज व्यवस्था पर क्या और कितना प्रभाव पड़ेगा। एक सर्वेक्षण के अनुसार, ऐसे कानूनों का सर्वाधिक लाभ धूर्त महिलाओं ने उठाया है। यहां तक कि धूर्त पुरुषों ने भी शरीफ पुरुषों के उत्पीड़न के उद्देश्य से महिला उत्पीड़न प्रावधानों का भरपूर दुरुपयोग किया। कुल मिलाकर वर्ग विद्वेष, वर्ग संघर्ष मजबूत हुआ और वर्ग समन्वय टूटा। परिवार व्यवस्था में भी टूटन बढ़ने लगी। वर्तमान महिला आरक्षण विधेयक इस टूटन को और अधिक बढ़ाएगा।

वर्तमान आरक्षण विधेयक का एक और दुष्प्रभाव होगा। कानूनी अधिकार सक्षम परिवारों की ओर केंद्रित हो जाएंगे। पहले संसद में यदि चार सौ परिवारों का प्रतिनिधित्व था, तो वह अब घटकर तीन सौ परिवारों तक सिमट जाएगा। यदि युवकों को भी आरक्षण दे दिया जाए, तो फिर तो और भी सुविधा हो जाएगी, सौ परिवारों की ही ठेकेदारी में संसद सिमट जाएगी। सरकारी नौकरियों का भी यही हाल होगा कि नौकरियां कुछ परिवारों तक सिमटने लगेंगी। यह केंद्रीयकरण तो और भी अधिक घातक होगा।

महिला और पुरुष के बीच की दूरी क्या हो, यह भी एक विषय है। यह दूरी यदि सीमा से अधिक बढ़ी, तो नई पीढ़ी का सृजन रुकेगा और सीमा से अधिक घटी, तो विध्वंस होगा। स्त्री और पुरुष की तुलना आग और बारूद से की जाती है। आग और बारूद की सीमा क्या हो, यह तय करना आसान नहीं। इसलिये समाज ने सहमत स्त्री-पुरुष के बीच की दूरी को न्यूनतम कर दिया और उसे पति-पत्नी के रूप में भी मान्यता दे दी और वैश्यालय के रूप में भी। दूसरी ओर असहमत स्त्री-पुरुष के बीच इस दूरी को अधिकतम कर दिया। यहां तक कि परिवार में भी। वर्तमान व्यवस्था इस दूरी की सीमाओं के निर्धारण में खिलवाड़ कर रही है। सहमत स्त्री-पुरुषों के बीच दूरी बढ़ाई जा रही है, वैश्यालय या बार बालाओं पर रोक लगाकर, तो असहमतों के बीच दूरी घटाई जा रही है, सहशिक्षा प्रोत्साहन या सरकारी नौकरी, संसद आदि में आरक्षण देकर। यह दूरी घटेगी, तो उससे होने वाली असुरक्षा भी सिरदर्द बनेगी ही। एक ओर आग और बारूद की दूरी घटाने का आनंद और दूसरी ओर रुचिका राठौर या नारायण दत्त तिवारी विध्वंस पर हाय तोबा एक साथ कैसे संभव है।

महिला आरक्षण विधेयक की समीक्षा में हमें प्राथमिकताएं तय करनी होंगी कि हम भारत में चरित्र पतन, भ्रष्टाचार आदि को पहली प्राथमिकता मानते हैं या महिला-पुरुष असमानता को। यह असमानता जन जागृति से कम होने में लंबा समय लगेगा, किंतु दुष्प्रभाव नहीं होगा। यदि यह काम कानून से होगा, तो जल्दी होगा और अनेक समस्याएं पैदा करेगा। मैं तो इस मत का हूं कि यदि महिला-पुरुष असमानता जल्दी दूर हो और वर्ग विद्वेष को बढ़ावे, अधिकार सक्षम परिवारों तक केंद्रित करे तथा धूर्तता को मजबूत करे, तो यह प्रयास लाभ कम और हानि अधिक करेगा। ऐसी जल्दबाजी से बचना चाहिए। पुरुष प्रधानता धीरे-धीरे कम हो और परिवार व्यवस्था, समाज व्यवस्था कमजोर न हो, यह अधिक सुरक्षित मार्ग होगा।

- महिला पुरुष सम्बन्धों पर मेरे कुछ विचार -

1. समाज में महिलाओं पर अत्याचार होता ही नहीं।
2. समाज में महिलाओं के साथ कोई भेदभाव भी नहीं होता। परिवार में महिला-पुरुष के बीच का भेदभाव एक व्यवस्था थी, न कि विकृति।
3. पति-पत्नी के बीच पति को हमेशा आक्रामक तथा पत्नी को आकर्षक होना चाहिए।
4. समाज में महिला या पुरुष अलग-अलग होते ही नहीं। उनका अलग संगठन बनना बिल्कुल गलत है। संपूर्ण भारत में कुल मिलाकर दो-चार लाख ही महिलाएं या पुरुष होंगे।
5. दहेज को एक समस्या बताना राजनेताओं का स्वार्थ मात्र है। दहेज कोई समस्या नहीं है, न उसका कोई अस्तित्व है।
6. कन्या भ्रूण हत्या रोकने का प्रयत्न एक व्यर्थ की कसरत है। यहां तक कि अनेक नासमझ धर्म गुरु भी कन्या भ्रूण हत्या रोकने की सलाह देते हैं।
7. दिसंबर 2012 में जन्तर-मन्तर पर बलात्कार के विरुद्ध आंदोलन करने वाली महिलाओं को भारत के पंचानवे प्रतिशत परिवारों की महिलाओं का कोई समर्थन नहीं था।
8. भारत में स्वतंत्रता के बाद महिला सशक्तिकरण के जो भी कानून बने, वे समाधान न होकर समस्या पैदा करने वाले अधिक हैं। ये सभी कानून समाज तोड़ने वाले हैं। ये सभी कानून पश्चिम की नकल हैं।
9. बाल विवाह का विरोध एक गलत कार्य है। बाल विवाह पर प्रतिबंध समस्याएं पैदा करता है, न कि समाधान।
10. तलाक संबंधी कानून हटा लेना चाहिए।
11. परिवार में महिलाओं के संपत्ति संबंधी बनाए गए अब तक के कानून बुरी नीयत से बनाए गए।
12. प्रेम विवाहों को प्रोत्साहन देना गलत कार्य है।
13. हिन्दू कोड बिल भारतीय विधायिका के लिए एक कलंक है।
14. महिला और पुरुष आग और बारूद के समान हैं। इनके बीच दूरी घटने से बलात्कार का खतरा बढ़ेगा, तथा दूरी बढ़ने से सृजन रुकेगा।
15. वैश्यालयों को बिल्कुल फ्री कर देना भी बलात्कार की रोकथाम में सहायक है।
16. बलात्कार संबंधी नब्बे प्रतिशत कानून अनावश्यक तथा अव्यवस्था पैदा करने वाले हैं।
17. परिवार के किसी सदस्य को परिवार में रहते हुए भी अपने मौलिक अधिकार तो होते हैं, किंतु संवैधानिक या सामाजिक अधिकार सामूहिक ही हो सकते हैं, अलग-अलग नहीं। परिवार के सदस्यों को अलग-अलग कानूनी या सामाजिक अधिकार देना समाज तोड़ने वाला कार्य है। यह घातक है।
18. दो प्रतिशत महिलाएं ही आधुनिक होती हैं, खुले समाज का आचरण करती हैं। शेष 98 प्रतिशत पारंपरिक परिवारों से होती हैं, बंद समाज का आचरण करती हैं। खुले समाज की महिलाओं की अपेक्षा बंद समाज की महिलाओं के आचरण का औसत बहुत अच्छा होता है। खुले समाज की महिलाओं के परिवारों में पारिवारिक टूटन, तलाक आदि भी बंद समाज की महिलाओं की अपेक्षा अधिक होता है।
19. महिला और पुरुष के आपसी संबंधों की सीमाएं तो वे स्वयं तय करते हैं या वे परिवार जिनके वे सदस्य हैं, कानून इसमें कोई दखल नहीं दे सकता।
20. स्त्री और पुरुष के बीच में दूरी घटनी है या बढ़नी है, इसका निर्णय परिवार करेगा, कोई कानून नहीं।
21. यौन शोषण को बहुत अधिक संवेदनशील बनाना घातक है। इसमें समाज की अपनी संरचना, विशेषकर पारिवारिक संरचना टूटेगी। बंद समाज और खुले समाज में होने वाले यौन अपराधों का मापदंड अलग-अलग होना चाहिए। बंद समाज में किया जाने वाला यौन अपराध खुले समाज में होने वाले वैसे ही अपराध की अपेक्षा अधिक कठोर दंडनीय होना चाहिए। बलात्कार के अतिरिक्त यौन शोषण तो बिल्कुल ही साधारण अपराध होता है।
22. बलात्कार एक अपराध है। कुछ विशेष घटनाओं को छोड़कर बलात्कार उतना गंभीर अपराध नहीं है जितना डकैती। बलात्कार स्वयं में एक छोटा अपराध है, जिसे अनावश्यक इतना बड़ा बना दिया गया है। बलात्कार के लिए जब तक कोई अन्य गंभीर अपराध न जुड़ा हो, तब तक पांच वर्ष से कम ही सजा पर्याप्त है।
23. महिला आरक्षण अन्य आरक्षणों की अपेक्षा कई गुना अधिक घातक है। यह समाज तोड़ने वाला तो है ही, परिवार तोड़ने वाला भी है। यह राजनीतिक षड्यंत्र है। नासमझ सामाजिक विद्वान या धर्म गुरु ही महिला आरक्षण का समर्थन करते हैं। महिला आरक्षण को तत्काल पूरी तरह समाप्त कर देना चाहिए।

महिला- पुरुष एक नैसर्गिक संबंध:

नई समाज व्यवस्था में हम इस बात को महसूस करेंगे कि सेक्स एक प्राकृतिक भूख है। हम उसे एक बुराई के रूप में नहीं मानते। सेक्स द्विपक्षीय भूख है, एकपक्षीय नहीं। सेक्स के मामले में जितनी मजबूरी पुरुषों के सामने होती है, उससे अधिक महिलाओं के समक्ष होती है। स्पष्ट है कि महिलाओं में सेक्स की भूख और मजबूरी पुरुषों की अपेक्षा अधिक होती है। हम सेक्स को संस्कारों के माध्यम से अथवा पारिवारिक सामाजिक अनुशासन के माध्यम से अनुशासित करने का प्रयत्न करेंगे, नियंत्रित करने का नहीं। कानून तो इस मामले में किसी प्रकार का हस्तक्षेप करेगा ही नहीं। हम सेक्स के मामले में किसी भी प्रकार के कानूनी हस्तक्षेप को अस्वीकार कर देंगे। जब तक कोई गंभीर बल प्रयोग नहीं होता है, तब तक कानून हस्तक्षेप नहीं करेगा। और यदि ऐसे मामले में सामाजिक पंचायत इस प्रकार के मामलों को निपटा देती है, तब भी कानून दखल नहीं देगा। अर्थात बलात्कार के मामलों में भी समाज को निपटारा करने में प्राथमिकता दी जाएगी। इस तरह नई समाज व्यवस्था में हम सेक्स की आवश्यकता और पूर्ति के बीच एक संतुलन बनाने की कोशिश करेंगे। हम सेक्स के मामले में पुरुषों को कटघरे में खड़ा करने की सारी कोशिशों को समाप्त कर देंगे, क्योंकि सेक्स महिला या पुरुष के बीच भेद नहीं करता। हम नई समाज व्यवस्था में महिला या पुरुष को कानून की नजर में एक व्यक्ति मानेंगे। हम महिला या पुरुष को अलग लिंग मानने की वर्तमान प्रणाली को समाप्त कर देंगे। सरकारी कानून में महिला या पुरुष के कानून अलग-अलग नहीं होंगे।

महिला वर्ग या परिवार का अंग

दुनिया में मुख्य रूप से चार संस्कृतियों के लोग रहते हैं- 1. पाश्चात्य या ईसाई 2. इस्लाम 3. साम्यवादी या अनीश्वरवादी 4. भारतीय या हिंदू। पाश्चात्य में व्यक्ति सर्वोच्च होता है, परिवार, धर्म, समाज, राष्ट्र गौण। इस्लामिक संस्कृति में धर्म सर्वोच्च होता है, परिवार, समाज, व्यक्ति, राष्ट्र गौण। साम्यवाद में राज्य सर्वोच्च होता है, व्यक्ति, परिवार, धर्म, समाज, राष्ट्र गौण। भारतीय संस्कृति में समाज सर्वोच्च होता है, व्यक्ति, धर्म, राष्ट्र गौण। यदि हम वर्तमान स्थिति की तुलना करें तो पश्चिम, इस्लाम और साम्यवाद अपनी-अपनी संस्कृतियों पर टिके हुए हैं, किंतु भारत पूरी तरह अपनी संस्कृति को छोड़ता ही जा रहा है। साथ ही, अन्य तीन संस्कृतियों की प्रतिस्पर्धा में अपनी सांस्कृतिक पहचान खो रहा है, अर्थात समाज से भी ऊपर धर्म, राष्ट्र या व्यक्ति को मानने लगा है।

प्राकृतिक रूप से कोई भी दो व्यक्ति पूरी तरह समान नहीं होते, किंतु महिला और पुरुष के बीच तो यह दूरी बहुत अधिक है। अब तक प्रकृति के अनेक रहस्य सुलझने बाकी हैं। उसी तरह यह भी एक रहस्य ही है कि प्राकृतिक रूप से महिला और पुरुष के बीच स्वाभाविक आकर्षण है, जो इन दोनों को एक-दूसरे के साथ रहने के लिए मजबूर करता है। इस आकर्षण को किसी परिस्थिति में रोकना या बाधा पहुंचाना बहुत घातक कार्य है। किंतु इस आकर्षण को यदि व्यवस्थित नहीं किया गया, तो समाज में अव्यवस्था फैल जाएगी। इसलिए परिवार रूपी एक इकाई बनाकर बीच का रास्ता निकाला गया, जिसमें महिला और पुरुष की प्राकृतिक आवश्यकता पूरी होती रहे, किंतु अव्यवस्था भी न फैले।

आदर्श स्थिति में व्यक्ति और समाज को मौलिक इकाई माना जाता है। न तो व्यक्ति से नीचे कोई इकाई है, न ही समाज से ऊपर। व्यक्ति और समाज के बीच आपसी तालमेल बनाए रखने के लिए एक सीढ़ी का उपयोग होता है, जो परिवार, गांव, जिला, प्रदेश और राष्ट्र से होती हुई समाज तक जाती है। यह सीढ़ी व्यक्ति को समाज से संपर्क रखने का काम करती है। इसी तरह समाज द्वारा निर्मित सरकार रूपी एक इकाई होती है, जो सबसे ऊपर होती है और व्यक्ति को नियंत्रित करने के लिए यह सीढ़ी राज्य के काम आती है। इस तरह यह सीढ़ी ही व्यक्ति से समाज तक और सरकार से व्यक्ति तक के संपर्क का माध्यम होती है।

व्यक्ति के बाद पहली सीढ़ी परिवार होती है। परिवार एक से अधिक व्यक्तियों को मिलाकर बनता है। सामान्यतः उसमें पुरुष और महिलाएं दोनों प्रकार के लोग शामिल होते हैं। परिवार स्वयं में एक संगठन होता है। कोई व्यक्ति जब किसी परिवार का सदस्य होता है, तो स्वाभाविक रूप से उसका परिवार के प्रति सम्पूर्ण समर्पण होता है, जिसमें वह स्वयं भी बराबर का सहभागी होता है। परिवार में शामिल होने के बाद व्यक्ति के संवैधानिक अथवा सामाजिक अधिकार समाप्त होकर परिवार के साथ जुड़ जाते हैं। परिवार में रहते हुए व्यक्ति की पहचान उसी तरह होती है,

जिस तरह शक्कर और पानी मिलकर शर्बत बन जाते हैं, अथवा ऑक्सीजन और हाइड्रोजन मिलकर पानी बन जाते हैं। स्वाभाविक है कि दोनों का अलग-अलग अस्तित्व तब तक शून्य हो जाता है, जब तक दोनों को अलग-अलग न कर दिया जाए। परिवार एक तीन पैर की दौड़ मानी जाती है, जिसमें परिवार के सदस्यों का एक-एक पैर खुला रहता है और बीच का पैर बंधा हुआ। स्वाभाविक है कि तीन पैर की दौड़ में कोई भी एक सदस्य यदि तालमेल से अलग हुआ या कर दिया गया, तो दौड़ाने वाला निश्चित रूप से प्रतिस्पर्धा में पिछड़ जाएगा। वर्तमान समय में हम परिणाम देख रहे हैं कि तालमेल के मामले में इस्लाम सबसे सफल है और साम्यवाद सबसे पीछे। पाश्चात्य संस्कृति में भी तालमेल का अभाव ही है और वर्तमान भारतीय संस्कृति को तो कभी पृथक संस्कृति माना ही नहीं जा रहा।

यदि हम परिवार व्यवस्था के आधार पर आकलन करें, तो मुस्लिम संस्कृति और हिंदू संस्कृति के बीच बहुत एकता है। जबकि पाश्चात्य संस्कृति और साम्यवादी संस्कृति के बीच भी बहुत सीमा तक एकता है। ये दोनों संस्कृतियां मिलकर भारतीय और इस्लामिक परिवार व्यवस्था को किसी भी तरह तोड़ना चाहती हैं। इस टूटन का ही प्रयोग स्थल भारत बना हुआ है। स्वाभाविक है कि परिवार व्यवस्था को छिन्न-भिन्न करने के लिए महिला और पुरुष के बीच अविश्वास की दीवार खड़ी करनी आवश्यक है। यदि तीन पैर की दौड़ से एक सदस्य के मन में संदेह के बीज बो दिए जाएं, तो परिणामस्वरूप पाश्चात्य और साम्यवादी संस्कृति अपने प्रतिस्पर्धी को पराजित कर सकती हैं। इसी बुरी नीयत को आधार बनाकर भारत में इन दोनों संस्कृतियों के एजेंट सफलतापूर्वक यह धारणा फैला रहे हैं कि महिला एक पृथक वर्ग है, संयुक्त परिवार की सदस्य नहीं। निरंतर यह बात फैलाई जा रही है कि पुरुष शोषक है और महिला शोषित। यह बात भी सब लोग जानते हैं कि महिला और पुरुष को एकाकार होना एक प्राकृतिक अनिवार्यता है। यदि किसी बालिग महिला को पुरुष के साथ जुड़ने से रोक दिया जाए, तो वह महिला भी उतना ही विद्रोह करती है जितना पुरुष, किंतु थोड़े ही दिनों बाद पाश्चात्य और साम्यवादी प्रचार से प्रभावित उस परिवार के पति-पत्नी के बीच शोषक और शोषित की दीवार खड़ी कर दी जाती है। यह समाज व्यवस्था के लिए बहुत घातक है, किंतु भारत में सामाजिक कार्य समझकर किया जा रहा है। कुछ लोग वर्ग विद्वेष बढ़ा रहे हैं, तो कुछ लोग नासमझी में वर्ग समन्वय की बात कर रहे हैं, जबकि सच्चाई यह है कि महिला और पुरुष अलग वर्ग हैं ही नहीं। नरेंद्र मोदी समेत हर राजनेता महिला सशक्तिकरण जैसे समाज विरोधी नारे को जोर-शोर से हवा दे रहे हैं। बेटी बचाओ जैसे शब्दों का धड़ल्ले से उपयोग हो रहा है। महिलाओं को कानून तोड़ने की ट्रेनिंग दी जा रही है। लगभग सिद्ध कर दिया गया है कि पुरुष शोषक है और महिला शोषित। न्यायालयों में भी कुछ मामलों में महिलाओं को सत्यवादी माना जाने लगा है। एक जमाना था जब इस्लाम महिलाओं को आधी गवाही का हकदार मानता था, तो अब नए जमाने में उन्हें दुगुना विश्वसनीय बताया जाने लगा है। न इस्लामिक मान्यता ठीक थी, न ही वर्तमान मान्यता ठीक है, क्योंकि किसी भी समूह में अच्छे और बुरे लोगों का प्रतिशत लगभग बराबर होता है, कम ज्यादा नहीं। किंतु सम्पूर्ण भारत में यह षड्यंत्र निरंतर चल रहा है। भारत में दो प्रतिशत आधुनिक महिलाएं 98 प्रतिशत पारंपरिक परिवारों की महिलाओं को ब्लैकमेल कर रही हैं। इन दो प्रतिशत का व्यक्तिगत और पारिवारिक जीवन भी कुछ भिन्न होता है। ये महिलाएं या तो अपने परिवार के संरक्षण में शेष परिवारों का आरक्षण के नाम पर या प्रगतिशीलता के नाम पर शोषण करती हैं, ब्लैकमेल करती हैं,अथवा अपने परिवार में तलाक

का गाजर मूली की तरह उपयोग करती हैं। किसी भी प्रकार का महिला सशक्तिकरण अथवा महिला आरक्षण या तो परिवार या समाज व्यवस्था में विखंडन पैदा करता है, अथवा शोषण। संसद में और सरकारी कार्यालयों में ये महिलाएं एक साथ बैठ सकती हैं, किंतु रेल डब्बों में या अस्पतालों में इन्हें खतरा महसूस होता है। सेना में लड़ने के लिए अब बहादुरी की अपेक्षा महिला होने को भी महत्व दिया जाएगा। पंचायतों में भी अब महिलाओं को आरक्षण मिलेगा। मैं अभी तक नहीं समझा कि महिला और पुरुष की दूरी घटाना इतना खतरनाक है, तो संसद, पंचायत, सरकारी कार्यालयों और सेना-पुलिस में यह दूरी प्रयत्नपूर्वक क्यों घटाई जा रही है। आए दिन देखा जा रहा है कि अपराधी प्रवृत्ति की महिलाएं खुलेआम पुलिस वालों के समक्ष अपराध कर रही हैं। मुख्यमंत्री और मंत्री पद पर आसीन महिलाएं भी जब चाहें तब किसी पुरुष के विरुद्ध आरोप लगा देती हैं। मैंने तो यहां तक देखा है कि अधिकांश महिला लेखक घुमा-फिराकर महिला सशक्तिकरण के लिए ही लेख लिखती हैं। उन्हें इसके अतिरिक्त कोई समस्या दिखती ही नहीं। अनेक महिलाएं जो विवाह के पूर्व भी महिला सशक्तिकरण की पक्षधर रही हैं, वे भी विवाह करने से अथवा गुप्त रूप से पुरुषों के साथ संपर्क बनाने से दूरी नहीं बनातीं। सम्पूर्ण समाज में एक प्रचलन है कि विवाह के समय लड़का अधिक योग्य और लड़की कम योग्य के बीच तालमेल बनाया जाता है। ये दो प्रतिशत महिला सशक्तिकरण का ढोंग करने वाली महिलाएं भी अपनी लड़कियों के विवाह के लिए अधिक योग्य लड़का ही खोजती हैं और लड़की को पति परिवार में जाने देती हैं। जब आपको स्वयं पता है कि इसका परिणाम पुरुष प्रधानता में ही है, तो क्या यह उचित नहीं होता कि कम से कम आप तो अपनी लड़की का विवाह कम योग्य लड़के से करतीं और लड़के को अपने घर में लाकर रखतीं। विवाह करते समय भारतीय संस्कृति का पोषण और विवाह के बाद पाश्चात्य संस्कृति के आधार पर विखंडन की दोहरी नीति बहुत घातक है।

नयी समाज व्यवस्था :

हम पूरी तरह भारत को भी आत्मनिर्भर बनाएंगे, प्रत्येक परिवार को आत्मनिर्भर बनाएंगे, प्रत्येक गांव को आत्मनिर्भर बनाएंगे। हम यह पूरी तरह प्रयत्न करेंगे कि भारत में आयात कम से कम हो और हम निर्यात बहुत अधिक कर सकें। डीजल पेट्रोल का तो आयात हम बहुत कम कर देंगे, कोयला और लकड़ी हम विदेशों से नहीं आने देंगे, हम आयात को निरुत्साहित करेंगे। भारत में हम आंतरिक खपत घटाएंगे जिससे निर्यात बढ़े। आवागमन को बहुत महंगा करेंगे जिससे ग्रामीण रोजगार जिंदा हो। बेरोजगारी को पूरी तरह समाप्त घोषित कर देंगे क्योंकि श्रम की मांग और श्रम का मूल्य इतना अधिक बढ़ जाएगा। कोई व्यक्ति बेरोजगार रहेगा ही नहीं। हम भारत के किसी भी व्यक्ति को मुफ्त में कुछ भी नहीं देंगे चाहे वह शिक्षा हो या अस्पताल हो या अन्य कुछ हो। सिर्फ निराश्रित लोगों के लिए हम न्यूनतम जीवन की गारंटी देंगे। इसके अतिरिक्त किसी को कुछ नहीं। हम एक-दो टैक्सों को छोड़कर सारे टैक्स भी समाप्त कर देंगे। इस तरह हम दुनिया को आत्मनिर्भरता का संदेश देंगे। हम जानते हैं कि पहले वर्ष में हमारी विकास दर घट जाएगी, हम यह खतरा उठाने के लिए तैयार हैं। हम यह भी जानते हैं कि अगले तीन-चार वर्षों के बाद हमारी विकास दर बहुत बढ़ जाएगी। इसलिए विकास स्तर का खतरा उठा लेंगे। सरकार किसी तरह का व्यापार नहीं करेगी। सरकारी विभाग बहुत कम होंगे। सरकार का खर्चा बहुत कम होगा। सरकार का भ्रष्टाचार बहुत कम हो जाएगा। हम सब कुछ निजीकरण कर देंगे। इस तरह हम एक नई अर्थव्यवस्था का प्रयोग करेंगे जो हो सकता है कि सारी दुनिया के लिए मार्गदर्शक बने।

नई समाज व्यवस्था में प्रत्येक इकाई अपना संविधान बनाएगी। व्यक्ति अपना संविधान बना सकता है, परिवार अपने परिवार के लिए संविधान बना सकता है, गांव का संविधान अलग हो सकता है, देश का संविधान अलग हो सकता है। इस तरह अलग-अलग इकाइयां अपने-अपने आंतरिक संविधान बना सकती हैं। संविधान के अनुसार ही उस इकाई के व्यक्ति या पदाधिकारी कार्य कर सकेंगे। यदि कोई किसी तरह की गलती करता है तो संविधान के अनुसार ही उस पर कार्यवाही हो सकती है, मनमानी नहीं। परिवार किसी भी समय किसी भी परिस्थिति में संविधान में संशोधन कर सकता है। इस तरह प्रत्येक इकाई के अपने-अपने संविधान होंगे जो ऊपर की इकाई के साथ तालमेल बनाकर रखेंगे।

नई समाज व्यवस्था में सभी प्रकार के वर्ग विद्वेष दूर करना हमारी जिम्मेदारी होगी। वर्तमान समय में जो व्यवस्था है उसमें कमजोर लोगों की समस्याएं दूर करने के लिए कमजोरों के आयोग बने हुए हैं। महिला आयोग में अधिकांश महिलाएं शामिल होती हैं। श्रम आयोग में श्रमिकों को तर्जिह दी जाती है, अन्य आयोगों में भी इसी तरह की व्यवस्था है। हम इस व्यवस्था को पूरी तरह पलट देंगे। महिलाओं की समस्याओं को समझने के लिए जो आयोग बनाया जाएगा उसमें सभी पुरुष होंगे और पुरुषों की समस्याओं को समझने के लिए महिलाओं का आयोग बनाया जाएगा। मजदूरों की समस्या समझाने के लिए पूंजीपतियों का आयोग बनाया जाएगा, पूंजीपतियों की समस्या समझाने के लिए श्रमिकों का आयोग बनेगा। हिंदुओं की समस्याओं को समझने के लिए मुसलमानों का आयोग बनेगा और मुसलमानों की समस्याएं समझने के लिए हिंदुओं का आयोग बनेगा। बुजुर्गों की समस्याएं समझने के लिए युवाओं का आयोग बनेगा और युवाओं की समस्याओं को समझने के लिए वृद्ध लोगों का आयोग बनेगा। इस तरह हम विपरीत आयोग बनाकर नई समाज व्यवस्था में वर्ग विद्वेष का समाधान करेंगे। हमारी नई व्यवस्था में यदि न्यायपालिका की कोई अवमानना होगी, उसकी सुनवाई न्यायालय नहीं, संसद करेगी। अगर संसद की कोई अवमानना होती है, इसका निर्णय संसद नहीं, न्यायालय करेगा। हम पूरा प्रयास करेंगे कि वर्ग संघर्ष खत्म हो, वर्ग समन्वय मजबूत हो।

वर्तमान समय में राज्य व्यवस्था ने समाज व्यवस्था को कमजोर करके सारी शक्तियां अपने पास इकट्ठी कर ली हैं, यह टकराव बहुत घातक होता जा रहा है। वर्तमान समय में सबसे बड़ी आवश्यकता यही है कि समाज और राज्य की शक्तियों के बीच संतुलन बने। नई समाज व्यवस्था में हम इसको पूरी तरह स्पष्ट विभाजन कर देंगे। व्यक्ति तीन प्रकार के होते हैं- 1. सामाजिक 2. असामाजिक 3. समाज विरोधी। समाज विरोधी तत्वों को रोकने में समाज और राज्य सब की सम्मिलित भूमिका होनी चाहिए। असामाजिक व्यक्तियों को रोकने में सिर्फ समाज की सक्रियता होनी चाहिए। राज्य का काम असामाजिक लोगों को रोकना नहीं है। सामाजिक लोगों को प्रोत्साहित करना समाज का काम है। राज्य उस कार्य में सिर्फ मदद कर सकता है, राज्य का काम नहीं है। राज्य के कार्य विभाजन भी तीन को मिलाकर बनेंगे- 1. न्यायपालिका 2. विधायिका 3. कार्यपालिका। यह तीनों मिलकर राज्य या तंत्र माने जाएंगे। समाज विरोधी कार्यों को रोकना इन तीनों की सम्मिलित जिम्मेदारी होगी लेकिन तीनों की भूमिकाएं अलग-अलग होंगी। विधायिका सिर्फ कानून बनाएगी, कार्यपालिका उन कानूनों का पालन कराएगी और न्यायपालिका व्यक्ति के मौलिक अधिकार पर किए गए आक्रमणों से उसकी सुरक्षा करेगी। इस तरह न्यायपालिका व्यक्ति के मौलिक अधिकारों की गारंटी देगी। तंत्र किसी भी परिस्थिति में व्यक्ति के असामाजिक कार्यों में कोई हस्तक्षेप नहीं करेगा। तंत्र की भूमिका बहुत सीमित हो जाएगी और समाज की भूमिका बहुत बढ़ जाएगी।

"...राज्य व्यवस्था ने समाज व्यवस्था को कमजोर करके सारी शक्तियां अपने पास इकट्ठी कर ली हैं, यह टकराव बहुत घातक होता जा रहा है। वर्तमान समय में सबसे बड़ी आवश्यकता यही है कि समाज और राज्य की शक्तियों के बीच संतुलन बने। नई समाज व्यवस्था में हम इसको पूरी तरह स्पष्ट विभाजन कर देंगे..."

लोक अर्थात समाज सर्वशक्तिमान होता है। भारत का समाज 140 करोड़ व्यक्तियों को मिलकर बना है। यह 140 करोड़ लोग ही मिलकर कोई संविधान बनाते हैं या उसमें बदलाव करते हैं, यह समाज का विशेष अधिकार है। इस संविधान निर्माण में किसी एक व्यक्ति को भी आप बाहर नहीं रख सकते, चाहे वह अपराधी हो, बच्चा हो, बीमार हो, पागल हो या कोई भी हो। इस तरह संविधान के निर्माण या संशोधन में सभी 140 करोड़ व्यक्तियों का प्रतिनिधित्व होना चाहिए। संविधान निर्माण का तरीका क्या हो, संशोधन का तरीका क्या हो, यह लोक अर्थात समाज ही तय कर सकता है, अन्य कोई नहीं। समाज जब चाहे बिना कारण बताएं संविधान में संशोधन कर सकता है। नया संविधान बना सकता है। बने हुए संविधान को रद्द कर सकता है। यह लोक का विशेष अधिकार है। लोक अर्थात मालिक यदि किसी को अधिकार देता है, तो वह उस अधिकार को बिना कारण बताएं कभी भी वापस ले सकता है। मालिक से ऐसा प्रश्न नहीं किया जा सकता। लोक ने यदि कोई प्रतिनिधि चुना है और 5 वर्ष के लिए नियुक्त किया है, तब भी लोक अपने प्रतिनिधि को कभी भी हटा सकता है। प्रतिनिधि कोई प्रश्न नहीं कर सकता। यह एक प्राकृतिक सिद्धांत है। पावर ऑफ अटॉर्नी को भी कभी भी हटाया जा सकता है। नई समाज व्यवस्था में हम इस तरह का प्रावधान करेंगे कि लोक सर्वशक्तिमान होगा, लोक मालिक होगा, लोग किसी तरीके से संविधान बनाएंगे, संशोधन करेंगे, उस तरीके पर तंत्र सवाल नहीं उठा सकता। तंत्र लोक द्वारा बनाए गए संविधान के अनुसार कार्य करने को बाध्य होगा। यह संभव है कि संविधान बनाते समय तंत्र से भी विचार-विमर्श किया जाएगा, लेकिन यह विचार-विमर्श करना लोक का कर्तव्य होगा, तंत्र का अधिकार नहीं। वर्तमान समय में भारत में जो संवैधानिक प्रक्रिया बनी हुई है और जो तंत्र कार्य कर रहा है, वह पूरी तरह अलोकतांत्रिक है क्योंकि उसमें लोक की कोई सहभागिता नहीं है। हम नई समाज व्यवस्था में लोक की अनिवार्य सहभागिता को स्थापित करेंगे। हम ऐसी व्यवस्था करेंगे कि लोग मिलकर संविधान निर्माण या संविधान संशोधन के लिए एक ऐसी प्रक्रिया बनाएँ जिस पर लोक का नियंत्रण हो, तंत्र का हस्तक्षेप न हो। हम संविधान सभा का पूरा-पूरा समर्थन करते हैं। नई समाज व्यवस्था में लोक अर्थात समाज एक संविधान सभा बनाएगा और लोक ही एक संसद बनाएगा। यह दोनों अलग-अलग लोक के प्रति उत्तरदाई होंगे। संविधान सभा तंत्र के किसी भी कार्य में किसी प्रकार का हस्तक्षेप नहीं कर सकेगी, लेकिन यदि तंत्र अथवा संविधान सभा को वर्तमान संविधान में किसी प्रकार के संशोधन या बदलाव की आवश्यकता महसूस होती है, तो दोनों मिलकर ही ऐसा संशोधन या बदलाव कर सकते हैं। इसी तरह तंत्र के तीन भाग न्यायपालिका, विधायिका और कार्यपालिका के बीच कोई टकराव होता है, उस टकराव की अपील संविधान सभा में की जा सकती है। यदि किसी मामले में संविधान सभा और तंत्र के बीच में टकराव होता है, ऐसे टकराव का अंतिम निर्णय जनमत संग्रह से किया जाएगा। इस तरह तंत्र संविधान की सीमाओं में रहते हुए अपने सारे कार्य करने के लिए स्वतंत्र होगा और संविधान में किसी प्रकार का संशोधन या बदलाव भी दोनों ही मिलकर कर सकेंगे। नई समाज व्यवस्था में परिवार से लेकर केंद्र सरकार तक यही व्यवस्था बनेगी। मेरा आप सबसे निवेदन है कि आप इस प्रस्ताव पर अपनी सलाह दें। मेरे विचार से वर्तमान सभी प्रकार के टकराव का यह सबसे अच्छा समाधान है।

नई समाज व्यवस्था, व्यवस्था परिवर्तन का मार्ग है, व्यवस्था में सुधार का नहीं। व्यवस्था परिवर्तन और व्यवस्था में सुधार इन दोनों में बहुत अंतर होता है। हम वर्तमान व्यवस्था में आमूल चूल बदलाव के पक्षधर हैं। इसका यह अर्थ नहीं है कि यदि वर्तमान व्यवस्था में किसी प्रकार के सुधार का कोई प्रयत्न हो रहा है, तो हम उस प्रयत्न के साथ नहीं हैं। सच्चाई यह है कि व्यवस्था में सुधार के प्रयत्न भी चलते रहेंगे और व्यवस्था परिवर्तन के लिए भी संघर्ष जारी रहेगा। यह दोनों बिल्कुल अलग-अलग बातें हैं, यद्यपि दोनों का ही महत्व है। हम यह अच्छी तरह समझते हैं कि हमारे वर्तमान समाज व्यवस्था को राजनीतिक व्यवस्था ने पूरी तरह गुलाम बना लिया है। राजनीतिक व्यवस्था किसी भी प्रकार के व्यवस्था परिवर्तन में सबसे बड़ी बाधा है, भले ही वह व्यवस्था में सुधार के लिए सहमत होती रहे। व्यवस्था परिवर्तन का वर्तमान समय में सिर्फ एक ही मार्ग है कि हमारा राष्ट्रीय संविधान हमारे तंत्र की गुलामी से मुक्त हो जाए। वर्तमान समय में हमें अर्थात समाज को संविधान संशोधन परिवर्तन में भी महत्वपूर्ण भूमिका मिले, सिर्फ एक छोटा सा बदलाव ही व्यवस्था परिवर्तन का मार्ग प्रशस्त कर सकता है। इस बदलाव के बाद हम सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक सब प्रकार की व्यवस्था में सुधार भी कर सकते हैं। व्यवस्था परिवर्तन भी कर सकते हैं, लेकिन जब तक संविधान संशोधन में समाज को महत्वपूर्ण भूमिका नहीं मिलती, तब तक कोई व्यवस्था परिवर्तन संभव नहीं है। इसलिए हम आप सब मिलकर हमारे भारतीय संविधान को तंत्र की गुलामी से मुक्त करने की पहल करें, यही है व्यवस्था परिवर्तन। किंतु यदि वर्तमान व्यवस्था में सुधार के कोई प्रयत्न हो रहे हैं, तो हम सब प्रयास के साथ हैं।

न्यायपालिका और संविधान

"... संसद या राष्ट्रपति भी किसी व्यक्ति के मौलिक अधिकारों पर कोई संशोधन या बदलाव करते हैं, तो न्यायपालिका ऐसे संविधान संशोधन को रद्द कर सकती है, यह न्यायपालिका का विशेष अधिकार है। राष्ट्रपति को भी इस मामले में एक विशेष अधिकार प्राप्त है कि राष्ट्रपति संविधान का संरक्षक होता है। राष्ट्रपति संविधान संशोधन के मामले में संसद का निर्णय मानने के लिए बाध्य नहीं है। न्यायपालिका तो इस मामले में दखल दे ही नहीं सकती, क्योंकि न्यायपालिका संविधान के अनुसार कार्य करने के लिए बाध्य है,..."

मेरे एक मित्र ओमप्रकाश जी दुबे ने आज लिखा है कि राष्ट्रपति राजेंद्र बाबू के अनुसार संविधान गलत नहीं होता, बल्कि संविधान के चलाने वाले दोषी होते हैं। मेरे विचार से राजेंद्र बाबू ने ऐसी बात नहीं कही थी। यह बात प्रधानमंत्री अटल बिहारी वाजपेई और राष्ट्रपति प्रतिभा पाटिल ने कही थी। यह बात देश के अन्य बड़े नेता भी बार-बार दोहराते रहते हैं कि संविधान गलत नहीं है, लोग गलत हैं जो संविधान का ठीक से पालन नहीं करते हैं। मेरे विचार से यह बात यदि राजेंद्र बाबू ने कहीं भी कही हो, तो यह पूरी तरह गलत है। सच बात यह है कि भारत का संविधान उन लोगों पर नियंत्रण करने के लिए बनाया गया है जो कानून का पालन नहीं करते। यदि संविधान ऐसे लोगों को रोकने में सफल नहीं है, तो संविधान दोषी है। संविधान में संशोधन करना पड़ेगा। यदि वास्तव में संविधान दोषी नहीं होता, तो अभी तक संविधान में सैकड़ों संशोधन हो चुके हैं, उनकी क्या जरूरत थी? एक सवाल और खड़ा होता है, यदि वास्तव में हम लोग दोषी हैं, तो फिर संविधान की जरूरत ही क्या है? पहले समाज को ही ठीक कर लिया जाए, समाज ठीक हो जाएगा तो संविधान अपने आप ठीक हो जाएगा, और अगर समाज गलत रहेगा, तो संविधान क्या ठीक कर लेगा? यह हमारे देश का दुर्भाग्य है कि हमारे राजनेता संविधान का दुरुपयोग भी करते हैं और संविधान को दोषी भी नहीं बताते हैं। यदि हम नेताओं की बात मान भी लें, तो यदि संविधान का दुरुपयोग लोग कर रहे हैं, तो ऐसे लोगों को सुधारने की जिम्मेदारी किसकी होगी, यह भी बताने की जरूरत है। अब समय आ गया है कि संविधान अपनी असफलता की जिम्मेदारी स्वीकार करे। जो लोग कानून का ठीक-ठाक पालन करते हैं, उन्हें रोकने के लिए उनके किसी कार्य में दखल देने के लिए हम लोगों ने संविधान नहीं बनाया है। संविधान उन लोगों के लिए बनाया गया है जो कानून का ठीक पालन नहीं करते हैं, और यदि संविधान नहीं रोक पा रहा है, तो संविधान को अपनी गलती स्वीकार करनी चाहिए और संविधान में आवश्यकता अनुसार बदलाव किया जाना चाहिए। मैं ओमप्रकाश दुबे जी की बात से पूरी तरह असहमत हूं।

वक्फ कानून पूरे देश में गंभीर चर्चा का विषय बना हुआ है। न्यायपालिका पर भी अनेक प्रश्न उठ रहे हैं। अभी मैं न्यायपालिका पर वक्फ के संबंध में कोई प्रश्न उठाना उचित नहीं समझता, क्योंकि न्यायपालिका ने अभी कोई निर्णय नहीं दिया है, और न्यायपालिका ने जो प्रश्न उठाए हैं, वे तर्कसंगत हैं। यद्यपि न्यायपालिका ने राष्ट्रपति के संबंध में जो प्रश्न उठाया, वह न्यायपालिका गलत है। न्यायपालिका ने न्यायिक भ्रष्टाचार पर जो संरक्षण दिया, वह भी पूरी तरह गलत है, लेकिन वक्फ के संबंध में न्यायपालिका पर कोई प्रश्न खड़ा करना जल्दबाजी होगी। अभी दो बातें महत्वपूर्ण सामने आ रही हैं। एक बात यह है कि जगदंबिका पाल जी के अनुसार और प्रतिष्ठित पत्रिका युगवार्ता में लिखे गए लेख के अनुसार भी यह प्रश्न उठा है कि स्वतंत्रता के पहले जब कोलकाता से दिल्ली राजधानी आई थी, तब अंग्रेज सरकार ने 127 ऐसी संपत्तियों को खरीदा था जो मुसलमानों की थीं, और उन संपत्तियों को खरीदकर राजधानी बनाई गई। लेकिन वास्तव में वे संपत्तियां वक्फ बोर्ड अपनी बताती है, और वक्फ बोर्ड का दावा है कि स्वतंत्रता के बाद बने कानून के अनुसार वह संपत्ति वक्फ की है, सरकार की नहीं। यह एक गंभीर प्रश्न खड़ा होता है। दूसरा प्रश्न यह भी खड़ा होता है कि जगदंबिका पाल जी के अनुसार वक्फ एक धार्मिक बोर्ड नहीं, प्रशासनिक बोर्ड है। इसलिए प्रशासनिक बोर्ड में यह आवश्यक नहीं है कि उसमें किसी एक धर्म के लोग ही हों। न्यायालय के सामने यह प्रश्न है कि वक्फ बोर्ड एक धार्मिक महत्व का बोर्ड है, और बहुत पुराने समय में यदि किसी संपत्ति के कागज नहीं हैं, तो क्या नए कानून के अनुसार उस संपत्ति को अवैध मान लिया जाएगा? दोनों तर्कों में अपने-अपने दम हैं। निर्णय क्या होगा, यह पता नहीं है, लेकिन मेरे विचार से मैं न्यायिक सक्रियता को वक्फ कानून से नहीं जोड़ता, बल्कि मैं न्यायिक सक्रियता को उस आधार पर तौल रहा हूं जिस आधार पर न्यायपालिका में भ्रष्टाचार बढ़ रहा है, और न्यायपालिका ने स्वयं को इस मामले में सुरक्षित कर लिया है। दूसरा, न्यायपालिका सभी संवैधानिक मुद्दों पर सभी संवैधानिक संस्थाओं से दिन-रात केवल प्रश्न करती है। लेकिन किसी संवैधानिक संस्था के प्रति उत्तरदाई नहीं है। यहां तक कि न्यायपालिका राष्ट्रपति के समक्ष भी उत्तरदायित्व स्वीकार नहीं करती, जो राष्ट्रपति संविधान का संरक्षक होता है। न्यायालय से कोई यह प्रश्न नहीं कर सकता कि आप किसी मुकदमे में कब निर्णय देंगे, लेकिन न्यायालय यह प्रश्न कर सकता है कि राष्ट्रपति किसी मामले में कितने दिन में फैसला करें। न्यायिक अतिक्रमण को वक्फ के साथ जोड़कर देखना उचित नहीं है।

भारत के उपराष्ट्रपति ने यह साफ-साफ विचार व्यक्त किया है कि न्यायपालिका अपनी संवैधानिक सीमाओं का अतिक्रमण कर रही है। न्यायपालिका कानून बनाने में भी दखल दे रही है, क्रियान्वयन में भी दखल दे रही है। न्यायपालिका सभी संवैधानिक संस्थाओं को कमजोर करके सारे कार्य अपने पास समेट लेना चाहती है। न्यायपालिका ने तो अब राष्ट्रपति को भी आदेश देना शुरू कर दिया है। उपराष्ट्रपति की यह बात बहुत उचित है। मैं यह समझता हूं, यह बात बहुत पहले ही कहीं जानी चाहिए थी, लेकिन बहुत देर हो गई है। मैंने 40 वर्ष पहले ही न्यायिक सक्रियता के विरोध में आवाज उठानी शुरू की थी, और 30 वर्ष पहले तो मैं भारत में न्यायिक तानाशाही मानना शुरू कर दिया था। उसके बाद लगातार न्यायपालिका अधिक से अधिक शक्तियां अपने पास इकट्ठा करती रही। आज देश की यह दुर्दशा है कि न्यायपालिका अपना कार्य छोड़कर सारा कार्य कर रही है। यह पहली बार इतनी साफ शब्दों में उपराष्ट्रपति ने न्यायपालिका पर टिप्पणी की है। उपराष्ट्रपति ने यह भी लिखा कि न्यायपालिका के किसी जज के भ्रष्टाचार पर न्यायपालिका चुप हो जाती है, और बाकी मामलों में न्यायपालिका सड़कों तक चिल्लाती है। यह बात न्यायपालिका को गंभीरता से सुननी चाहिए कि भारत न्यायिक तानाशाही से नहीं, लोकतांत्रिक तरीके से चलेगा। सच में यह बात बहुत गंभीर है कि न्यायपालिका सभी संवैधानिक संस्थाओं से प्रश्न पूछ रही है, लेकिन न्यायपालिका से प्रश्न कोई नहीं कर पा रहा है, क्योंकि तानाशाह से सवाल कौन करेगा। उपराष्ट्रपति जी ने बहुत हिम्मत का काम किया है।

यह बात पूरी तरह प्रमाणित हो गई है कि न्यायपालिका लगातार तानाशाही की दिशा में भी जा रही है, और भ्रष्टाचार के भी कीर्तिमान बना रही है। लेकिन यह स्थिति कब से आई और क्यों आई? सन 72 में जब हमारी संसद तानाशाह बन गई, तब न्यायपालिका ने असंवैधानिक हस्तक्षेप करते हुए भारत में लोकतंत्र को बचा लिया, अन्यथा भारत का लोकतंत्र खतरे में पड़ जाता। इसके लिए न्यायपालिका को बहुत अधिक प्रशंसा मिली। धीरे-धीरे सन 85 में न्यायपालिका ने और

अधिक ताकत अपने पास समेट ली, क्योंकि तब तक न्यायपालिका में भ्रष्टाचार शुरू हो चुका था। भ्रष्टाचार और सम्मान की भूख में न्यायपालिका शक्तिशाली हो गई, और धीरे-धीरे न्यायपालिका और अधिक शक्तिशाली होने लगी, क्योंकि शक्ति ही उसके भ्रष्टाचार को छिपाने का माध्यम थी। अर्थात न्यायपालिका में अन्य लोगों के आम भ्रष्टाचार की तुलना में कई गुना अधिक भ्रष्टाचार भी होने लग गया, और न्यायपालिका की प्रतिष्ठा में भी कमी नहीं आई, क्योंकि न्यायपालिका ने अपने को चारों तरफ से सुरक्षित कर लिया था। मुझे याद है कि प्रशांत भूषण ने जिस समय न्यायपालिका पर भ्रष्टाचार के आरोप लगाए थे, उस समय सारा भारत आश्चर्यचकित था कि प्रशांत भूषण ने सच्चाई को इतनी हिम्मत से कैसे उजागर किया। प्रशांत भूषण के बाद ऐसी हिम्मत किसी की नहीं हुई, लेकिन ईश्वरीय प्रकोप से अभी किसी न्यायाधीश के घर में आग लग गई, और बिना खोजे प्रमाण मिल गया। इस तरह न्यायपालिका नदी में डूबकर मछली खाने का भी आनंद ले रही थी, और शाकाहारी भी बनी हुई थी। जिस तरह न्यायपालिका ने तानाशाही और भ्रष्टाचार का कीर्तिमान बनाया, इन दोनों के परिणाम स्वरूप ही न्यायपालिका में उच्च स्तरीय भाई-भतीजावाद आया। अपने परिवारों को न्यायाधीश बनाने की गलत होड़ लग गई, और आज उसी का परिणाम है कि न्यायपालिका पूरे देश में बदनाम होती जा रही है। अब न्यायपालिका को सोचना होगा कि वह अपनी शक्ति को किस तरह कम करें, जिससे जनता को अपना वीटो उपयोग न करना पड़े। मेरा निवेदन है कि न्यायपालिका अपनी शक्तियों पर फिर से विचार करें। देश किसी तानाशाही से नहीं चलेगा। राजनीतिक भ्रष्टाचार को रोकने के लिए हमें तानाशाही भ्रष्टाचार स्वीकार नहीं है।

भारत में संविधान, न्यायपालिका तथा राष्ट्रपति के मामले में एक गंभीर बहस शुरू हो गई है। अपने-अपने तर्क प्रस्तुत किए जा रहे हैं। उपराष्ट्रपति सांसद निषिकांत दुबे तथा अन्य लोगों ने कुछ अपने तर्क दिए हैं, तो विपक्षी दलों ने भी अपने-अपने तर्क दिए हैं। न्यायपालिका से जुड़े लोग भी अपने विचार दे रहे हैं। सारी चर्चा दो गुटों में विभाजित हो गई है। मैं भी संविधान पढ़ा है और संविधान पर रिसर्च भी किया है। मेरा अब तक का यह अनुभव है कि हमारी न्यायपालिका के न्यायाधीशों ने संविधान पढ़कर परीक्षाएं दी हैं, संविधान को समझा कभी नहीं। सच बात यह है कि हमारे देश के न्यायपालिका से जुड़े अनेक लोग तो आज तक यह नहीं बता सकते कि अपराध, गैर कानूनी और अनैतिक में क्या फर्क होता है। जबकि यह अंतर कोई साधारण व्यक्ति बहुत आराम से बता सकता है। यदि हम संवैधानिक मामलों में चर्चा करें, तो यह बात बिल्कुल साफ है कि न्यायपालिका संविधान की संरक्षक नहीं होती, न्यायपालिका प्रत्येक व्यक्ति के मौलिक अधिकारों की संरक्षक होती है। इस मामले में न्यायपालिका को वीटो अधिकार भी प्राप्त है। यदि संसद या राष्ट्रपति भी किसी व्यक्ति के मौलिक अधिकारों पर कोई संशोधन या बदलाव करते हैं, तो न्यायपालिका ऐसे संविधान संशोधन को रद्द कर सकती है, यह न्यायपालिका का विशेष अधिकार है। राष्ट्रपति को भी इस मामले में एक विशेष अधिकार प्राप्त है कि राष्ट्रपति संविधान का संरक्षक होता है। राष्ट्रपति संविधान संशोधन के मामले में संसद का निर्णय मानने के लिए बाध्य नहीं है। न्यायपालिका तो इस मामले में दखल दे ही नहीं सकती, क्योंकि न्यायपालिका संविधान के अनुसार कार्य करने के लिए बाध्य है, राष्ट्रपति नहीं। राष्ट्रपति संविधान का संरक्षक होता है, यह बात न्यायपालिका को समझनी चाहिए। मैं इस बात को समझता हूं कि सन 72 तक हमारी राष्ट्रपति के माध्यम से विधायिका और कार्यपालिका ने न्यायपालिका को बंधक बनाकर रखा, उसकी सीमाओं में अतिक्रमण किया। 72 के बाद न्यायपालिका ने कार्यपालिका, विधायिका, राष्ट्रपति की सीमाओं में अतिक्रमण किया, और वर्तमान समय में जब न्यायपालिका ने अपनी सारी सीमाएं तोड़कर राष्ट्रपति को आदेश दिया, तब यह विवाद शुरू हो गया है। मेरे विचार से न्यायपालिका गलत है। किसी दिल को अनंत काल तक रोककर रखना किसी व्यक्ति के मौलिक अधिकारों का उल्लंघन नहीं है। संवैधानिक अधिकारों का उल्लंघन हो सकता है, और संवैधानिक अधिकारों के उल्लंघन में न्यायपालिका संविधान से बाहर नहीं जा सकती।

वर्तमान भारत में संविधान गुलाम है। हमारे संसद और न्यायपालिका, संविधान पर कब्जा करने की लड़ाई लड़ रहे हैं। जबकि नई व्यवस्था में संविधान पूरी तरह स्वतंत्र होगा। संविधान लोक का प्रतिनिधित्व करेगा, और तंत्र संविधान का पालन करेगा। एक प्रश्न यह उठता है कि क्या वर्तमान संविधान को बदल दिया जाना चाहिए या इस संविधान में कुछ संशोधन करना चाहिए। मेरे विचार से हम संविधान में किसी प्रकार के फेरबदल के लिए कोई योजना नहीं बना रहे हैं, हम तो वर्तमान संविधान में सिर्फ एक संशोधन चाहते हैं कि संविधान संशोधन में तंत्र के साथ-साथ लोक की भी कोई भूमिका होनी चाहिए। इतना संशोधन मात्र हो जाए, जो बहुत छोटा संशोधन है। हम यह नहीं कह रहे हैं कि संविधान संशोधन से तंत्र को बिल्कुल बाहर कर दिया जाए। हम यह भी नहीं कह रहे हैं कि संविधान में बहुत बड़े-बड़े बदलाव कर दिए जाएं। हम तो सिर्फ इतना कह रहे हैं कि संविधान संशोधन में लोक की भी किसी तरह की भूमिका हो। वह भूमिका क्या हो, इस संबंध में सरकार कोई आयोग बना सकती है। हम अनेक प्रकार की भूमिकाएं देखते हैं। या तो संविधान संशोधन में ग्राम सभाओं की भूमिका दी जाए, अथवा जनमत संग्रह कराया जाए, अथवा एक अलग संविधान सभा भी बना दी जाए, और संविधान सभा की उसमें भूमिका हो, अथवा डिग्री कॉलेज से ऊपर के सौ ऐसे प्राचार्य चुने जाएं जो संविधान संशोधन पर विचार करें। कोई और भी तरीका हो सकता है, हमें कोई आपत्ति नहीं है। कोई भी तरीका हो, लेकिन संविधान संशोधन में लोक की भी महत्वपूर्ण भूमिका होनी चाहिए। हम नई सामाजिक व्यवस्था जब बनाएंगे, तो उसमें संविधान संशोधन में लोक की महत्वपूर्ण भूमिका होगी। तंत्र को संविधान निर्माण या संविधान संशोधन में असीम भूमिका नहीं होगी।

मैंने न्यायपालिका पर पिछले दिनों कई पोस्ट लिखी, बहुत अच्छा समर्थन मिला, लेकिन यह सब बातें वर्तमान व्यवस्था की कमजोरी हैं, समाधान नहीं। वर्तमान न्यायपालिका और संसद

के बीच स्वतंत्रता के बाद लगातार छीना-झपटी का वातावरण बना रहा। इसमें शुरुआत में गलती कहां से हुई, यह गंभीर प्रश्न है, और उसका अब समाधान क्या है। मेरा विचार है कि शुरुआत में संविधान सभा को भंग नहीं होना चाहिए था। संविधान बन जाने के बाद संविधान सभा ही अल्पकाल के लिए नए चुनाव होते तक संसद का भी कार्य करती रहती, और बाद में संसद बन जाने के बाद संविधान सभा बनी रहती। लेकिन संविधान सभा ने खुद को संसद घोषित कर दिया, और संविधान संशोधन भी वही संविधान सभा संसद के नाम से करती रह गई। यह अवश्य है कि उसने संविधान सभा भंग करने के बाद भी संविधान सभा का कार्य राष्ट्रपति के पास सुरक्षित रखा, लेकिन सन 72 में संसद ने राष्ट्रपति से भी वह अधिकार छीन लिए। इस तरह संविधान सभा की भूमिका भविष्य में पूरी तरह खत्म हो गई, यह सबसे बड़ी गलती हुई। अब इसका समाधान यही हो सकता है कि हम एक नई संविधान सभा बनाएं, जिसमें मेरे प्रस्ताव अनुसार 543 सदस्य हों। यह संख्या कम-ज्यादा भी हो सकती है। चुनाव जनता करें, चुनाव का तरीका कोई भी हो सकता है, बाकी सारे नियम तो अलग से बन सकते हैं, लेकिन एक संविधान सभा हो। संविधान के मामले में संविधान सभा अंतिम निर्णय करें। जजों की नियुक्ति में भी संविधान सभा की भूमिका डाली जा सकती है। यदि न्यायपालिका, विधायिका और कार्यपालिका के बीच कोई टकराव होता है, संविधान सभा निर्णय कर सकती है। इस तरह हम संवैधानिक मामले संविधान सभा को दे सकते हैं, और संविधान के अंतर्गत सारे कार्य तंत्र करता रहेगा। तंत्र और संविधान सभा को अलग-अलग बनाना ही इस समस्या का समाधान है।

बजरंग मुनि

हिन्दू मुस्लिम संबंध-

"...70 वर्षों से नेहरू परिवार और अब्दुल्ला परिवार लगातार यह मांग कर रहा था कि कश्मीरी का दिल जीतने से समाधान होगा, बंदूक से नहीं। वह सब लोग दिल जीतने का नाटक कर रहे थे और कश्मीर में आतंकवाद बढ़ता जा रहा था।..."

1- यह बात सर्वविदित है कि दुनिया में जहां भी मुसलमान 30% के आसपास हो जाता है, तब वह बल प्रयोग के माध्यम से अपनी संख्या बहुत तेज गति से बढ़ाना शुरू कर देता है। दुर्भाग्य से भारत के कुछ मुसलमानों ने जल्दबाजी करके धर्म के आधार पर पाकिस्तान बना लिया, जिसके कारण उनकी संख्या फिर भारत में 10% के आसपास हो गई। अब नेहरू के साथ मिलकर मुसलमानों ने अपनी संख्या बढ़ाकर 15-16% के आसपास कर ली है। लेकिन एकाएक बीच में व्यवधान आ गया और सरकार नरेंद्र मोदी की बन गई। अब भारत के मुसलमान को यह बात साफ दिखने लगी है कि वह उस गति से संख्या नहीं बढ़ा सकेंगे, जो योजना उनकी थी। उन्हें मुसलमानों के खिलाफ भारत में आक्रोश भी बढ़ता हुआ दिख रहा है। उन्हें यह भी दिख रहा है कि पाकिस्तान और बांग्लादेश को छोड़कर दुनिया के अन्य मुस्लिम देश उनके साथ खड़े नहीं दिख रहे हैं। ऐसी स्थिति में अब भारत का मुसलमान दुविधा में पड़ा हुआ है कि वह फिर से एक बंटवारे की दिशा में जाए अथवा भारत में शांत रहे। उसे यह पता है कि विभाजन की सबसे पहले शुरुआत बंगाल से ही हुई थी और वह बंगाल में ही ममता को साथ लेकर इस तरह की शुरुआत करना चाहता है, जिससे भारत का कोई नई विभाजन की रूपरेखा बना सके। वर्तमान समय में जो बंगाल में मुसलमानों ने कुछ बांग्लादेशियों को बुलाकर नया प्रयोग किया है, उस प्रयोग में इसी तरह की गंध आती है। लेकिन अब बंगाल का मुसलमान यह भूल जा रहा है कि इस समय न अंग्रेजों की सरकार है, न विपक्ष में कोई जान बची है। ममता बनर्जी अकेली क्या कर लेंगी। ममता बनर्जी को भारत की जनता स्वीकार नहीं करेगी क्योंकि उनकी विश्वसनीयता खत्म हो गई है। इसलिए भारत का मुसलमान अब शांत है और बंगाल अपने नए प्रयोग कर रहा है। मैं ममता दीदी और बंगाल के मुसलमान को यह स्पष्ट कर देना चाहता हूं कि भारत का विभाजन अब किसी भी तरीके से नहीं हो सकेगा, न संवैधानिक तरीके से हो सकेगा, न टकराकर हो सकेगा। वर्तमान समय में भारत में कोई ऐसा गांधी भी नहीं है जो बीच बचाव कर सकेगा। अब यदि कोई इस प्रकार टकराने की कोशिश करेगा, तो वह सीधा खुदा के घर में जाने की तैयारी करेगा। यदि भारत का संविधान देश की सुरक्षा के बीच में कहीं रोड़ा बनेगा, तो सुरक्षा को प्राथमिकता दी जाएगी, संविधान को नहीं।

2- पिछले दिनों की घटनाओं में हम लोगों ने एक बात साफ देखी कि कश्मीर के मुसलमान में बहुत बड़ा बदलाव दिख रहा है। कश्मीर के जो मुसलमान लगातार पाकिस्तान के पक्ष में आवाज उठाते थे, वह सब भी अब सक्रिय होकर आतंकवाद के विरोध में आवाज उठा रहे हैं। 70 वर्षों से नेहरू परिवार और अब्दुल्ला परिवार लगातार यह मांग कर रहा था कि कश्मीरी का दिल जीतने से समाधान होगा, बंदूक से नहीं। वह सब लोग दिल जीतने का नाटक कर रहे थे और कश्मीर में आतंकवाद बढ़ता जा रहा था। पिछले कुछ वर्षों में भारत सरकार ने अपने तरीके से कश्मीर का दिल जीता और आप देख रहे हैं कि वहां के कश्मीरी का दिल पूरी तरह बदल गया। अब उन लोगों ने हिंसा को छोड़कर शिक्षा का मार्ग अपना लिया है, अब उन लोगों ने बंदूक और पिस्तौल को छोड़कर धर्म के वास्तविक अर्थ को समझना शुरू कर दिया है और यह सब हुआ है नरेंद्र मोदी के तरीके से दिल बदलने से। गुजरात के मुसलमान का दिल बदल गया, उत्तर प्रदेश के संभल के मुसलमान का दिल बदल गया, संभल में पिछले 6 महीने पहले हुए चुनाव में वहां के अधिकांश मुसलमान ने योगी को वोट दिया। संभल का दिल बदल गया। धीरे-धीरे उत्तर प्रदेश का दिल बदल रहा है। दिल बदलने की योजना चाहिए, दिल बदलने का तरीका चाहिए, दिल बदलने की नीयत चाहिए। नरेंद्र मोदी, मोहन भागवत, योगी आदित्यनाथ, अमित शाह मिलकर जिस तरीके से मुसलमान का दिल बदल रहे हैं, वही तरीका सबसे अच्छा तरीका है। वह तरीका नहीं जो नेहरू परिवार तथा ममता बनर्जी, अखिलेश यादव दिल बदलने का नाटक करते रहते हैं। वास्तव में जिस तरीके से दिल बदलते नहीं हैं, उस तरीके को छोड़ देने की जरूरत है। दिल बदलने के लिए नेहरू परिवार को नरेंद्र मोदी से सीखना चाहिए।

3- पहलगाम आतंकवादी घटना ने पूरे देश भर में आक्रोश पैदा किया है। भारत सरकार और भारत की आम जनता के साथ-साथ पूरी दुनिया ने इस घटना की निंदा की है। लेकिन मैं देख रहा हूं कि पिछले दो दिनों से भारत के कुछ बयानवीर इस प्रकार की दुखद घटनाओं का लाभ उठाने का भी प्रयास कर रहे हैं। ऐसे ही एक व्यक्ति ने लिखा है कि भारत के सभी मुसलमान का बहिष्कार करना चाहिए, कोई भी मुसलमान विश्वसनीय नहीं है। एक दूसरे बयानवीर ने लिखा कि भारत को चाहिए कि तत्काल भारत के मुसलमान को पाकिस्तान भेज दे, भारत में कोई भी मुसलमान नहीं रहना चाहिए। एक तीसरे ऐसे ही साथी ने लिखा, भारत के सभी हिंदुओं को अपने घरों में हथियार रखने चाहिए, अब हम हथियार नहीं रखेंगे तो हम मारे जाएंगे और भी इस प्रकार की अनेक बातें सुनने में आईं। मैंने यह महसूस किया कि इस प्रकार के बयानों में कोई न तथ्य होता है, न तत्व होता है, यह तो केवल अपने चूतड़ पर ताल देने के अतिरिक्त कुछ नहीं है। जो लोग सलाह देते हैं कि मुसलमान को सबको विदेश भेज दिया जाए, पाकिस्तान भेज दिया जाए, वे भूल जाते हैं कि दुनिया में मुसलमान के 57 देश हैं और भारत अकेला देश है, इस प्रकार की बातों का कोई महत्व नहीं है। जो लोग कहते हैं कि भारत के सभी हिंदुओं को हथियार रखना चाहिए, उन्हें हथियारों का अनुभव नहीं है। मैंने खुद देखा है कि 25 साल पहले जब रामानुजगंज जिले में नक्सलवाद का प्रवेश हुआ, तो नक्सलवादियों ने सबसे पहले घरों से हथियार उठाने शुरू कर दिए और जब हथियार खतरे में आए, तो सब लोगों ने अपने हथियार थाने में जाकर जमा कर दिए। कोई हथियार काम नहीं आता है। यह भ्रम है कि हथियार रहेगा तो काम आएगा, सच्चाई यह है कि हथियार हमेशा विरोधियों के काम आता है, अपने काम नहीं आता। इसलिए यदि आप हथियार के शौकीन हैं, तो हथियार आप सरकार को दे दीजिए, सरकार उसका उपयोग कर लेगी। यह बयानवीर इतना भी नहीं समझते कि आप नरेंद्र मोदी, मोहन भागवत को वोट जैसी चीज तो एक होकर दे नहीं पा रहे हैं और बात करते हैं हथियार रखने की। मैं पूरी तरह आश्वस्त हूं कि अब भारत के किसी भी व्यक्ति को हथियार रखने की कोई आवश्यकता नहीं है, क्योंकि भारत में नरेंद्र मोदी और मोहन भागवत की सरकार है। यदि आप इस प्रकार के आतंकियों से वास्तव में मुकाबला करना चाहते हैं, इस सरकार के हाथ मजबूत कीजिए, पूरी ताकत लगा दीजिए कि मोदी-भागवत की जोड़ी अधिक से अधिक शक्तिशाली बन जाए। भारत में कोई आतंकवाद नहीं रहेगा। यदि हम आपस में मिलजुल कर यह काम करें कि सरकार भारत में हिंदुत्व की सुरक्षा करें और हम दुनिया में हिंदुत्व का संदेश दें, तो मेरे विचार से सबसे अच्छा मार्ग यही होगा।

11

4- गाजापट्टी और कश्मीर की ताजा घटनाएं यह बात सिद्ध कर रही हैं कि दुनिया के मुस्लिम देश एक गंभीर उलझन में पड़े हुए हैं। उन्हें यह बात समझ में नहीं आ रही है कि उन्हें पीछे हटना चाहिए या मुकाबला करना चाहिए। गाजा में भी फिलिस्तीनियों के प्रमुख अब्बास ने यह महत्वपूर्ण बात कही कि हमास के कुत्तों ने हम सबके लिए जीना हराम कर दिया है। यह 100 लोगों को बंधक रखकर हजारों लोगों को मरवा रहे हैं, यह कौन सी मूर्खता है। आखिर मरने वाले फिलिस्तीनी हैं, मुसलमान हैं और यह बात निश्चित है कि बड़ी संख्या में और भी मारे ही जाएंगे। यह बात किसी अन्य मुसलमान ने नहीं कही, बल्कि फिलिस्तीनियों के राष्ट्रीय अध्यक्ष ने कही है। फंस गए राहुल गांधी, फंस गए अखिलेश यादव और ममता बनर्जी, यह दिन-रात फिलिस्तीन-फिलिस्तीन चिल्लाते रहते थे और फिलीस्तीन के लोग हमास के खिलाफ खड़े हैं। आज आप देख रहे हैं कि इजरायल लगातार उनकी जमीनों पर भी कब्जा कर रहा है, इन्हें लगातार मार भी रहा है, दुनिया के कोई मुस्लिम देश इनकी मदद के लिए नहीं आ रहा है। ठीक उसी तरह कश्मीर के मामले में भी पाकिस्तान दिन-रात चिल्ला रहा है, लेकिन दुनिया का कोई भी मुस्लिम देश पाकिस्तान की आवाज सुनने के लिए तैयार नहीं है। आखिर यह स्थिति क्यों पैदा हुई? क्योंकि मुसलमान ने इतना ज्यादा अत्याचार किया कि सारी दुनिया उनके खिलाफ खड़ी हो गई। अब हमें विचार करना है कि हम पीछे हटते हुए मुसलमान को दूर तक खदेड़े अथवा उन्हें भगाने का अवसर दें। मेरा अपना विचार है कि वर्तमान दुनिया के वातावरण में हमें उनका पीछा नहीं करना चाहिए। भारत के जो भी मुसलमान हिंदुओं के साथ शांतिपूर्वक रहना चाहते हैं, उन सबको अवसर दिया जाना चाहिए। हम उनसे सावधान रह सकते हैं, लेकिन सारे मुसलमान बुरे हैं, इस प्रकार खुलेआम बोलना मेरे विचार से किसी भी दृष्टि से ठीक नहीं है। मैं मानता हूं कि कुछ मुट्ठी भर कट्टरवादी हिंदुओं को इस तरह की भाषा बोलने में मजा आता है, क्योंकि अब नरेंद्र मोदी प्रधानमंत्री हैं और इस वक्त इस तरह उटपटांग बोलने में कोई खतरा नहीं है, लेकिन इस तरह की भाषा उचित नहीं है। मेरी फिर से सलाह है कि जिस तरह कट्टरपंथी मुसलमान की दुनिया में छीछालेदर हो रही है, उससे कट्टरपंथी हिंदुओं को सबक लेना चाहिए। भारत के हिंदुओं को गोडसे से नहीं, मोहन भागवत से शिक्षा लेनी चाहिए।

5- लगभग 17 वर्ष बीतने के बाद प्रज्ञा सिंह ठाकुर और पुरोहित का आतंकवादी होने का मामला न्यायालय में अंतिम चरण में है। 8 मई को निर्णय घोषित हो सकता है। यह बात स्पष्ट दिखती है कि न्यायालय से यह सब लोग निर्दोष मुक्त हो सकते हैं, क्योंकि जिन गवाहों पर न्यायालय में मुकदमा टिका हुआ था, उनमें से अनेक प्रमुख गवाहों ने अपनी गवाही बदल ली है। यह सरकार बदलने का ही प्रभाव दिख रहा है। इस मामले के मुख्य गवाह असीमानंद, जो पहले पुलिस के वायदा मुक्त गवाह थे, उन्होंने भी अपनी गवाही बदल ली है, जबकि वहीं प्रमुख गवाह थे। साफ है कि जब तक कांग्रेस सरकार रही, तब तक गवाह कुछ अलग भाषा बोलते रहे और सरकार बदलने के बाद गवाहों की भाषा बदल गई। क्या सच है, क्या झूठ है, यह पता नहीं है। हो सकता है कि इस मुकदमे में पिछली सरकार ने कुछ बढ़ा-चढ़ा कर आरोप लगा दिए हों और वर्तमान सरकार में कुछ बढ़ा-चढ़ा कर उन आरोपों को कमजोर कर दिया हो। सच्चाई चाहे जो भी हो, लेकिन यह बात तो अभी संदेह के घेरे में है कि इस मामले में चाहे प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष ऐसे लोगों की भूमिका दिखती है, जो हिंदुत्व को आतंकवाद की दिशा में ले जाना चाहते थे। वह भूमिका कम है या ज्यादा और किन-किन लोगों की है, यह तो बात स्पष्ट नहीं है, लेकिन पूरी तरह निर्दोष कहना भी अभी जल्दबाजी होगी। इस विषय पर कुछ और लिखना मेरे लिए उचित नहीं है, लेकिन मैं इतना अवश्य मानता हूं कि प्रज्ञा सिंह ठाकुर या उनके कुछ अन्य साथियों ने जिस तरह गेरुआ वस्त्र पहनकर इस प्रकार की भाषा का उपयोग किया या उनके ऊपर जिस तरह के आरोप लगे, यह किसी संन्यासी के लिए उचित नहीं दिखते। इस प्रकार के वस्त्र और इस प्रकार के आरोप हिंदू धर्म को कलंकित करते हैं। प्रज्ञा सिंह ठाकुर का न्यायालय से निर्दोष मुक्त होना भी इस बात का प्रमाण नहीं है कि उनकी गतिविधियां एक संन्यासी के रूप में बहुत अच्छी रही हैं। हेमंत करकरे सरीखे ईमानदार अफसर ने इस प्रकरण की जांच की और जांच करके जो संदेह व्यक्त किया, उन संदेहों के आधार पर मैं यह कह सकता हूं कि हेमंत करकरे ने हिंदू धर्म को भविष्य के कलंक से बचा लिया, अन्यथा इस प्रकार की कलंकित विचारधारा कितना भी आगे तक जा सकती थी और हिंदू धर्म का भविष्य कलंक का होता, जो आज मुस्लिम आतंकवादियों का हाल दिख रहा है। मैं हेमंत करकरे को इस प्रयास के लिए बधाई देता हूं।

राजनैतिक चर्चा

1- मेरे एक मित्र ने बताया कि राहुल गांधी चे ग्वेरा और फिदेल कास्त्रो के बहुत ज्यादा समर्थक हैं। दुनिया जानती है कि चे ग्वेरा, फिदेल कास्त्रो या ऐसे कुछ अन्य लोग हिंसक क्रांति पर विश्वास करते हैं। ऐसे लोगों को किसी भी रूप में न अहिंसा पर कोई भरोसा है न कानून का पालन करते हैं। किसी भी तरह हिंसा का सहारा लेकर सत्ता प्राप्त करना और सत्ता प्राप्त करने के बाद हिंसा के माध्यम से अपने को मजबूत करना इन सब की जीवन भर की नीति रही है। हमारे राहुल गांधी इस प्रकार के खूनी लोगों के समर्थक हैं और दुर्भाग्य है कि अपने नाम के आगे गांधी जोड़ते हैं। भारत में भी राहुल गांधी ने पिछले दो-तीन वर्षों में लगातार यह प्रयास किया कि नरेंद्र मोदी चीन से लड़ जाएं, नरेंद्र मोदी अमेरिका से टकरा जाएं, नरेंद्र मोदी पाकिस्तान, बांग्लादेश में दखल दे दें। राहुल गांधी लगातार यह बोलते रहे कि कहां गया नरेंद्र मोदी का 56 इंच का सीना। इसके बाद भी इतना कहने के बाद भी नरेंद्र मोदी पूरी तरह शांत रहे। उन्होंने हमेशा बुद्धि से काम लिया। राहुल गांधी ने तो यहां तक आरोप लगा दिया कि चीन ने भारत के बड़े भूभाग पर कब्जा कर लिया है और नरेंद्र मोदी अपने घर में दुबक गए हैं, उनकी हिम्मत नहीं हो रही है कि चीन के सामने बोल सकें। राहुल गांधी ने 50 बार इस बात की कोशिश की कि नरेंद्र मोदी किसी न किसी देश से लड़ जाएं। मुझे आश्चर्य होता है कि वही राहुल गांधी एक तरफ भारत सरकार को हिंसक टकराव की सलाह देते हैं, चे ग्वेरा और फिदेल कास्त्रो की प्रशंसा करते हैं, दूसरी तरफ वही राहुल गांधी भाईचारा की दुकान चलाते हैं। वही राहुल गांधी देश भर में घूम-घूम कर कहते हैं कि हमें मोहब्बत चाहिए, प्रेम चाहिए, टकराव नहीं। जो राहुल गांधी देश भर में यह कहते हैं कि मैं महिलाओं को कराटे सिखा रहा हूं, जो प्रियंका गांधी देश भर में घूम-घूम कर कहती हैं कि लड़की हूं, लड़ सकती हूं, वहीं राहुल और प्रियंका गांधी का नाम लेकर मोहब्बत का पैगाम भी देते रहते हैं। पता नहीं चलता कि इन दोनों के चेहरे किस प्रकार अलग-अलग दिखते हैं, दोनों क्या चाहते हैं। दोनों फिदेल कास्त्रो और चे ग्वेरा बनना चाहते हैं या दोनों गांधी के मार्ग पर चलना चाहते हैं। मैं तो अभी यही समझा कि दोनों पूरी तरह नाटकबाजी कर रहे हैं, किसी तरह कुर्सी पर बैठ जाएं। हो सकता है कि कुर्सी पर बैठते ही राहुल गांधी, गांधी को भी भूल जाएं और चे ग्वेरा को भी भूल जाएं। उन्हें सिर्फ याद रहे नेशनल हेराल्ड और देश की संपत्ति की लूट।

शिक्षा व्यवस्था और कानून-

1- दिल्ली के एक प्राइवेट स्कूल में एक विद्यार्थी 3 महीने से फीस जमा नहीं कर रहा था। स्कूल प्रशासन ने उसे स्कूल में आने से रोक दिया। दिल्ली के उच्च न्यायालय ने इस पर संज्ञान लिया और स्कूल प्रशासन को यह आदेश दिया कि आप इस प्रकार बच्चों का भविष्य खराब नहीं कर सकते। दिल्ली की वर्तमान सरकार ने भी इस बात के लिए जांच करनी शुरू कर दी कि दिल्ली के प्राइवेट स्कूल मनमानी फीस नहीं बढ़ा सकते हैं; उन्हें सरकार द्वारा अनुमति प्राप्त करके ही फीस बढ़ानी होगी। अब आप विचार करिए कि हमारी सरकार, उच्च न्यायालय, और सर्वोच्च न्यायालय सरकारी स्कूलों के हालात नहीं सुधार पा रहे हैं और प्राइवेट स्कूलों में दखल दे रहे हैं। अगर प्राइवेट स्कूल अपनी फीस नहीं बढ़ाएंगे, अगर अपना खर्चा नहीं निकालेंगे, तो उनकी हालत तुरंत खराब हो जाएगी। मेरा अपना अनुभव यह है कि आज भारत के लाखों बच्चे विदेश पढ़ने जा रहे हैं क्योंकि विदेशों में उन्हें उच्च स्तर की पढ़ाई मिलती है और भारत में उन्हें सस्ती पढ़ाई दी जाती है, पढ़ाई का स्तर नहीं है। जो बच्चे भारत में 10,000 रुपए में पढ़ सकते थे, वही बच्चे विदेश में जाकर 50,000 रुपए खर्च कर रहे हैं क्योंकि विदेशों के स्कूल उच्च स्तर के हैं। इसी तरह अस्पतालों का भी मामला है; भारत की चिकित्सा प्रणाली बहुत सस्ती है लेकिन स्टैंडर्ड विदेश से बहुत नीचे है। क्या हम भारत में भी विदेश स्तर की पढ़ाई और अस्पताल नहीं दे सकते? हम दे सकते हैं, लेकिन अगर सरकारी हस्तक्षेप करना बंद कर दें। वकील अपनी फीस मनमानी बढ़ा सकता है, व्यापारी अपनी वस्तुओं की कीमत बढ़ा सकता है, लेकिन स्कूल अपनी फीस नहीं बढ़ा सकता क्योंकि निकम्मी सरकार अपना स्तर सुधारने की अपेक्षा प्राइवेट स्कूलों में दखल दे रही है। जो बालक को स्कूल से निकाला गया, उसे मुफ्त शिक्षा के लिए सरकारी स्कूल में जाने से किसने रोक रखा है? यह उच्च न्यायालय और सरकार नाम की जो संस्थाएं हैं, यह सब केवल दिखावे के लिए हैं; वास्तव में यह भारत को ऊंचा स्टैंड बनाने में बाधक है। मेरे विचार से प्राइवेट स्कूल और प्राइवेट अस्पताल इस मामले में सरकार और उच्च न्यायालय को दखल नहीं देना चाहिए।

ज़ूम चर्चा कार्यक्रम का सारांश

दिनांक 15 4 2025 हिन्दू कोड बिल बनाने की मांग नेहरू, अम्बेडकर के द्वारा स्वतंत्रता के तत्काल बाद शुरू कर दी गई थी। मुसलमानों की आबादी बढ़ती रहे, ऐसा सोचकर हिन्दू कोड बिल में यह प्रावधान किया कि हिन्दू एक से अधिक विवाह नहीं कर सकते और मुसलमान कर सकते हैं। इस प्रावधान को उन्होंने उन हिन्दू महिलाओं के प्रति न्याय बताया, जिस हिन्दू धर्म से उनके मन में सदैव घृणा रही। **मा.सू.सं. 2843**

हिंदू कोड बिल नेहरू ने अंबेडकर की सहायता से लाया था जिसमें हिंदुओं के रीति रिवाज परंपराएं तथा उनके सामाजिक मान्यताओं को अस्वीकार कर पश्चिमी मॉडल पर आधारित कानून संहिताका निर्माण किया। यह कानून व्यवस्था हिंदू समाज के लिए कालांतर में घातक साबित हुई। विपिन तिवारी जी ने चर्चा चर्चा की शुरुआत नेहरू और अंबेडकर के व्यक्तिगत विचारों को लेकर की। उनका कहना था कि यह दोनों कट्टर हिंदू विरोधी थे और अपने निहित स्वार्थ के लिए यह कोड लाया।

पवंजय जी ने अलग तरीके से अपनी बात रखी और कहा कि नेहरू ने मुसलमान को अपने हाल पर छोड़ दिया। मुसलमान की तरक्की के लिए उन्होंने कुछ नहीं किया। नेहरू ने मुस्लिम समाज में व्याप्त कुरीतियों को दूर करने के लिए कुछ भी नहीं किया। इसका परिणाम यह हुआ कि मुस्लिम समाज अपनी दकियानूसी सोच और मजहबी मान्यताओं से ऊपर उठ नहीं पाया। उन्होंने मोदी शासन की यह कहते हुए प्रशंसा की की सरकार ने मुसलमानों के उत्थान के लिए काफी कुछ किया है।

मंगला प्रसाद जी ने मुसलमानों के दोहरी रवैया पर सवाल खड़ा किया। वैद्य आहूजा जी ने बहु विवाह पर सवाल खड़े किए। विपुल आदर्श ने तर्क रखा की मुसलमान अपनी हालात के लिए खुद ही जिम्मेदार हैं। बृजेश राय जी ने मुसलमान में व्याप्त कट्टरता पर सवाल खड़े किए। हिंदू कोड बिल के दोहरे चरित्र पर प्रश्न उठाया। नरेंद्र सिंह जी ने अपने विचार व्यक्ति किये। श्रीकांत सिंह जी ने हिंदू कोड बिल का अप्रत्यक्ष रूप से समर्थन किया और अंबेडकर का महिमा मंडन किया। ज्ञानेंद्र आर्य जी ने अंबेडकर पर सवाल खड़ा किया और उनकी कार्यशैली और मानसिकता पे सवाल खड़े किए। उन्होंने अंबेडकर को ब्रिटिश समर्थक तक कह डाला।

हमारे मार्गदर्शक मुनि जी ने हिंदू कोड बिल निरर्थक बताया और कहा कि इसे समाप्त करना चाहिए। उन्होंने आगे कहा कि नेहरू हिंदुओं से घृणा करते थे और अंबेडकर में हिंदुओं के प्रति प्रतिशोध की भावना थी जिसके कारण दोनों ने कोड मिलकर अपनी भड़ास निकाली। आगे उन्होंने कहा कि अंबेडकर ने कभी भी स्वतंत्रता आंदोलन में योगदान नहीं दिया।

विपुल आदर्श ने सवाल खड़ा किया कि क्या बहु विवाह सामाजिक बुराई है या किसी समय में सामाजिक आवश्यकता। उन्होंने तर्क दिया कि लिंगानुपात महिलाओं के पक्ष में था इसीलिए बहु विवाह प्रचलन में आया। चर्चा में आगे सवाल जवाब का दौर चला जिसमें मुनि जी ने उत्तर दिया। इस चर्चा में कुल मिलाकर 21 लोगों ने भाग लिया।

whatsapp at
8318621282

२) दिनांक 29 4 2025 मंथन क्रमांक 381: मैं तो अब भी पारंपरिक विवाह प्रणाली को प्रेम विवाह प्रणाली की अपेक्षा वरीयता देने का पक्षधर हूं । मेरे विचार से प्रेम विवाह दो सहमत स्त्री पुरुषों का विशेषाधिकार है। किंतु वह आदर्श स्थिति नहीं है। मा.सू.सं.5614

इस उद्धरण में पारंपरिक विवाह और प्रेम विवाह पर विचार प्रकट किया गया है। पारंपरिक विवाह को प्रेम विवाह की अपेक्षा अच्छा माना गया है। हालांकि यह भी कहा गया है कि प्रेम विवाह दो स्त्री पुरुष का विशेषाधिकार है और इसके लिए वह स्वतंत्र हैं। सृष्टि के आदिकाल से विवाह व्यवस्था हर समाज, देश,काल में किसी ने किसी रूप में मौजूद रही है। भारतीय समाज में विवाह संस्था का अन्यतम स्थान है। हिंदुओं की विवाह व्यवस्था को पूरे संसार में अनूठा और अकाट्य माना गया है। हमारे यहां पारंपरिक रूप से व्यवस्था विवाह का प्रचलन रहा है। परंतु गंधर्व विवाह का भी किसी ने किसी रूप में अस्तित्व रहा है। आज प्रेम विवाह का जो चलन है वह कहीं ना कहीं गंधर्व विवाह का ही एक रूप है। आधुनिक काल में भारतीय समाज में प्रेम विवाह का प्रचलन तेजी से फैला है। इसके पीछे आधुनिक जीवन शैली और राज्य का हमारी पारिवारिक व्यवस्था में हस्तक्षेप है। सरकार के द्वारा अनावश्यक रूप से प्रेम विवाह का महिमा मंडन किया जा रहा है या अप्रत्यक्ष रूप से उकसाया जा रहा है जो कि अत्यंत घातक है। हमारे समाज में प्रेम विवाह को अक्सर प्रतिष्ठा का विषय मानकर विरोध किया जाता है परंतु मेरा यह मानना है कि अंतरजातीय विवाह और अंतर धार्मिक विवाह को राज्य के द्वारा बढ़ावा देना कहां तक सही है। चर्चा में आचार्य सुनील देव जी ने तर्क दिया कि चाहे व्यवस्था विवाह हो या प्रेम विवाह गुण कर्म स्वभाव की अनदेखी करने पर रिश्ता नहीं चल सकता।

राज्य के द्वारा प्रेम विवाह को बढ़ावा देने के फलस्वरूप समाज में हिंसा और विघटन का माहौल है जो सही नहीं है। समाज में अनुशासन अत्यंत आवश्यक है। अतः विवाह अनुशासित और सामाजिक मानदंडों के अनुरुप ही होना चाहिए। चर्चा में विपुल आदर्श, ज्ञानेंद्र आर्य, पवंजय त्रिपाठी, मदन आर्य, भास्कर जी आदि ने अपनी राय रखी। चर्चा सार्थक एवं उद्देश्य पूर्ण रही।

जीवन पथ

(पिछले अंक में अपने पढ़ा कि विवेक और उसके साथियों के साथ प्रो.श्रीवास्तव विभिन्न सामाजिक विषयों पर चर्चा कर रहे हैं, सिमी विवेक के संगठन और धर्म को अलग बताने पर प्रश्न करती है .... अब आगे)

वह अपना स्पष्टीकरण प्रस्तुत करता है-
इस विषय में, मैं आप लोगों के सामने जो भी तर्क प्रस्तुत करूँगा उससे पहले यह कहना चाहूँगा कि मैन धर्म को किसी नए ढंग से परिभाषित नहीं किया है बल्कि समाज द्वारा विभिन्न काल खण्डों में धर्म की विषय-वस्तु को जिस प्रकार भी आचरणगत रूप से स्वीकार किया गया है, व्यक्ति मात्र के जीवन पर उसका जैसा भी प्रभाव पड़ा है तथा धर्म के विषय में समय-समय पर विभिन्न महानुभावों ने इस विषय में जो तथ्य अन्वेषित किए हैं, उनसे मार्गदर्शन पाकर मैने धर्म के सूत्र का यह सूक्ष्म निरीक्षण किया है कि समाज के लिए धर्म का यह प्रारूप होना चाहिए, मैं व्यक्तिगत तौर पर तो धर्म के गुण प्रधान स्वरूप को स्वीकार करता हूँ। .....हाँ प्रश्नगत स्थिति स्पष्ट करने के लिए इतिहास का निरीक्षण करने पर मुझे धर्म के संगठन के रूप में प्रवृत्त होने के दो कारण महसूस हुए है। जिनमें एक तो यह है कि समाज के भौतिक विकास के प्रारम्भिक काल में इसके नेतृत्वकर्ताओं ने प्रकृति प्रदत्त संसाधनों के दोहन के लिए तथा समाज के क्रमिक विकास के साथ उत्पन्न होने वाली समस्याओं एवं रूढीवाद के निराकरण के लिए व्यक्तियों के उस समूह को किन्ही सीमाओं में आबद्ध किया होगा। यह नियमन व्यावहारिक, रहन-सहन, खान-पान, वेश-भूषा, पूजा-पद्धति इत्यादि प्रकार का हो सकता है। लेकिन इतना होने पर भी यह नियमन व्यक्तियों के उस समूह को समाज के रूप में स्थापित करने का प्रयास कतई नहीं हो सकता था। क्योंकि समाज, व्यक्ति के मन का नैसर्गिक विचार है। यद्यपि इन चर्चित विषयों के इस प्रकार नियमन का मुझे कहीं कोई स्थापित साक्ष्य नहीं मिला है। लेकिन यह निश्चित है कि समाज में व्यावहारिक आबद्धता इन्हें पारम्परिक नियम के रूप में अवश्य स्थापित करती है। इस प्रकार समाज के उस समूह का उसके तात्कालिक नेतृत्वकर्ता द्वारा किया गया यह नियमन किसी प्रारम्भिक धार्मिक संगठन के रूप में प्रवृत्त हुआ होगा। प्राचीन एवं मध्यकालीन दुनिया में ऐसा कई स्थानों पर हुआ है। जिसके उदाहरण के रूप में पश्चिमी एशिया के सुदूरवर्ती तटो पर पहले यहूदी तथा फिर इसाईयत के रूप में धार्मिक संगठन बने तथा पश्चिम मध्य एशिया के अरब देशों में इस्लाम के रूप में कथित धार्मिक संगठन का विकास हुआ। मानव सभ्यता के इतिहास में इन घटनाओं का तामीर होना केवल परिस्थिति जन्य था।

अलग-अलग कालखण्डों में तथा अलग-अलग स्थानों पर इन संगठनो को वहाँ के तात्कालिक समाज ने अपनी अव्यवस्थित जीवन प्रणाली को सुदृढ़ बनाने के लिए स्वीकार किया होगा। इस दृष्टिकोण का विश्लेषण करते हैं तो ऐसा जान पड़ता है कि वहाँ के समाज द्वारा इन विचारों को स्वीकार करने में कोई खास मुश्किल नहीं हुई होगी। यद्यपि यह विषय भी देशकाल परिस्थिति के अनुसार किसी सुधारवादी अवधारणा को स्वीकार करने का विषय ही सिद्ध होता है जोकि धर्म का बीज सूत्र है, लेकिन धर्म वंशानुगत या जड़ विषय-वस्तु नहीं होती है। जो उस यथार्थ के अनुसार धारण करने योग्य था उसे इतिहास के नायकों ने स्वीकार किया और जो बीतते हुए समय में स्वीकार करने योग्य होता है उसे तत्कालीन समाज को स्वीकार करने की या उसमें यथार्थपरक परिवर्तन करने की छूट होनी चाहिए। लेकिन इस नैसर्गिक नियम के विरूद्ध मध्य तथा पश्चिम एशिया, यूरोप तथा दुनिया के कई अन्य इलाकों में धर्म को संगठन के रूप में स्थापित करने में इसाई तथा इस्लाम सम्प्रदाय (कथित धर्म) की विशेष भूमिका रही है।

इस विषय का दूसरा कारण भारतीय दृष्टिकोण पर आधारित है। मैं इस विषय की चर्चा के अन्तर्गत यह बात दावे के साथ कह सकता हूँ कि धर्म के विषय में जितना अन्वेषण भारतीय मनीषा ने किया है, उतना दुनिया में कहीं पर भी और किसी ने भी नहीं किया है। यहाँ धर्म के मूल तत्व, तर्क को जीवन प्रणाली का आधार मानने से लेकर रूढ संगठनवाद तक सभी प्रकार के मूल व तथाकथित धार्मिक विचारों का प्रादुर्भाव, प्रभाव, बढोत्तरी, उनकी समीक्षा एवं उन्मूलन होता रहा है। हम भारतीय संस्कृति के इतिहास का अन्वेषण करते हैं तो सांसारिक दृष्टिकोण के अनुसार हमारे सामने धर्म के दो रूप प्रस्तुत होते हैं। विषय के स्पष्टीकरण के लिए मैं जिनकी पुनरावृत्ति किए देता हूँ, जिनमें एक रूप है गुण प्रधान और दूसरा है संगठन प्रधान। धर्म का कोई अन्य स्वरूप मेरी समीक्षा में तो नहीं है। धर्म के गुण प्रधान स्वरूप का सम्बन्ध व्यक्ति के गुण, कर्म, स्वभाव से होता है और संगठन प्रधान स्वरूप का सम्बन्ध व्यक्ति के वंश, सम्प्रदाय, वेशभूषा, खान-पान, पूजा-पद्धति, चोटी-दाढ़ी, जनसंख्या जैसी रूढ़ पहचान से होता है। इतिहास हमे बताताहै कि भारतीय वैदिक कालीन सभ्यता में धर्म के गुण प्रधान स्वरूप का विशेष प्रभाव था। तब धर्म का अर्थ कर्तव्य के साथ गहराई से जुड़ा था। उस काल में व्यक्ति का व्यावहारिक स्वभाव एवं कर्मनिष्ठा उसे धर्मनिष्ठ और धर्महीन सिद्ध करते थे। उस काल में धर्म तथा सम्प्रदाय में स्पष्ट गुण विभाजन था। तब आधुनिक काल की तरह धर्म की कोई संगठनात्मक पहचान नहीं थी। व्यक्ति का व्यक्तिगत कार्यो में निजता का अधिकार सुरक्षित था तो सार्वजनिक कार्यों में समाज के प्रति उत्तरदायी होना उसके धर्म का दर्शन था। उपासना पद्धति के आधार पर बने संगठन सम्प्रदाय कहे जाते थे। लेकिन उनका व्यक्ति की सामाजिक जीवन प्रणाली पर कोई प्रभाव नहीं था। कालान्तर में धर्म का यह रूप रूढ होना प्रारम्भ हो गया। उस काल में धर्म शब्द तो प्रचलित था लेकिन हिन्दू या अन्य ऐसे ही साम्प्रदायिक अर्थ स्पष्ट करने वाले शब्द प्रचलित नहीं थे। (हिन्दू शब्द की उत्पत्ति के दृष्टिकोण की चर्चा यहाँ सम्भव नहीं है) समाज के आन्तरिक आंचल में यदि कोई विवाद या संघर्ष होता था तो राज्य भी समाज के प्रति उत्तरदायी रहते हुए न्याय करता था। लेकिन कालान्तर में समाज की प्राकृतिक स्वतन्त्रता को परिभाषित करने वाली यह जीवन प्रणाली व्यक्ति के व्यक्तिगत स्वार्थ तथा समाज के ढांचे में परिवर्तन के चलते रूढीवाद का शिकार हो गयी। वैदिक धर्म में आए रूढीवाद के दुष्परिणामों के कारण भारतीय परिवेश में जैन एवं बौद्ध सम्प्रदायों का उदय हुआ। मूलतः धर्म का कोई व्यक्तिगत संस्थापक नहीं होता है। धर्म, वस्तुस्थिति और व्यक्तिमात्र के आचरण को पहचानने का लक्षण है। वैदिक सार भी धर्म के इसी स्वरूप को परिभाषित करता हैं। लेकिन मनुष्यकृत रूढियों का दुष्प्रभाव बढने से वैदिक धर्म पथभ्रष्ट हो गया। जिसके कई कारण तो वर्णव्यवस्था के वंशानुगत जातिवाद में परिवर्तित हो जाने से उत्पन्न हुए। सामाजिक असन्तुलन, हिंसा के अति स्तर तक बढ़ने व न्याय की समग्र स्थापना के अभाव से पनपे रूढीवाद के कारण भारत में सर्वप्रथम इन दोनों संगठनात्मक तथाकथित धर्मों का प्रादुर्भाव हुआ। यद्यपि इन दोनों व्यक्ति जनित तथाकथित धर्मो के चरित्र सार में वैदिक धर्म की तरह धर्म के कई मूल लक्षणों का सार समाहित है किन्तु मानव सभ्यता इन दोनों लगभग समकालीन कथित धर्मो की स्थापना पर व्यक्ति जनित संगठनात्मक धर्म के प्रभाव से परिचित हुई।

इस विषय की चर्चा के परिप्रेक्ष्य में बौद्ध व जैन धर्म की शिक्षाओं की चर्चा करना मेरा मंतव्य नहीं है। मैने इतिहास के इस निरीक्षण में केवल धर्म के संगठनात्मक प्रादुर्भाव के ढंग और उसके परिणाम को पहचानने का प्रयास किया है। विभिन्न विद्वानों के विश्लेषण के अनुसार यह ठीक या गलत भी हो सकता है। लेकिन यह निश्चित है कि इन उच्च आदर्शवादी साम्प्रदायिक धर्मों की उत्पत्ति ने मानव सभ्यता के इतिहास में भारतीय दर्शन की दिशा परिवर्तित कर दी। महात्मा बुद्ध के अनुयाईयों ने समाज में पहली बार बुद्धं शरणं गच्छामि, धम्मं शरणं गच्छामि, संघंशरणं गच्छामि के जातीय नारे को धर्म प्रज्ञ मानकर संगठनात्मक धर्म के आदर्श को स्वीकार किया। धर्म में संघवाद के प्रवेश के कारण बुद्ध की पवित्र तथा तार्किक शिक्षा 'अप्पो दीपो भव' जो समाज में स्वराज्य की अवधारणा को मूर्तरूप देने का आधार बन सकती थी, उचित नीति नियोजन के आभाव में वह लोगों के लिए पूर्व के साम्प्रदायिक वर्चस्ववाद को उखाडने के लिए नए सम्प्रदाय की स्थापना करने का मार्ग सिद्ध हुई। इस प्रकार कालान्तर में समाज, व्यक्तियों का समूह न रहकर मत-मतान्तरों के विभिन्न संगठनों मे विभक्त हो गया। बुद्ध से पहले किसी भी भारतीय महापुरूष ने धर्म को संगठन का रूप नहीं दिया था। यद्यपि इस विषय में यह तर्क भी प्रस्तुत किया जा सकता है कि बुद्ध और जैन से पहले भारतीय समाज में वैष्णव, शैव व अन्य सम्प्रदाय थे। लेकिन ऐसा होने पर भी उनका प्रभाव समाज की गुण प्रधान व्यवस्था का नेतृत्व नहीं करता था, क्योंकि तब सम्प्रदायवाद समाज व्यवस्था का मान्य दृष्टिकोण नहीं था। यद्यपि इस सत्य के साक्ष्य भी इतिहास के आँचल में मिलते हैं कि जैन व बुद्ध सम्प्रदायों के उदय के समय सनातन धर्म पथ भ्रष्ट हो चुका था। जिसके प्रतिरोध में इन साम्प्रदायिक संगठनो का उदय हुआ लेकिन इस विषय में भी समाज कालान्तर में यह अन्वेषण करने में असफल रहा कि सनातन धर्म की जिन कुरीतियों का उन्मूलन उस काल में इन तात्कालिक संगठनो ने किया, कालान्तर में प्रत्येक संगठन ऐसी ही कुछ कुरीतियों की उत्पत्ति का कारक बनता ही है। मूलतः यही संगठनवाद का दुष्परिणाम होता है। मैं इस चर्चा के अन्तर्गत इस विषय में भी अपने विचार व्यक्त करने चाहुँगा कि यह कोई एक मात्र तथ्य नहीं है कि समाज के ढाँचे में संगठनों के निर्माण का कारण केवल तथाकथित धार्मिक मत-मतान्तर ही रहे हैं। इस क्रिया के होने के दूसरे भी कई कारण हो सकते हैं। लेकिन यह ऐसी वजह अवश्य है जिसने समाज के ढाँचे में कठोर एवं अव्यावहारिक संगठनों के निर्माण में अन्य से ज्यादा परिस्थितियां उत्पन्न की हैं। मेरी नजर में इस विषय ने धार्मिक संगठनों का समर्थन व विरोध करने वाले तमाम लोगों के सामाजिक जीवन का ढाँचा उसी प्रकार कमजोर किया है जैसे कि धर्म के कई मूल गुणों को संजोने एवं संवर्धित करने वाले हिन्दू मत को उसके कठोर एवं अव्यावहारिक जातिवादी ढाँचे ने कमजोर किया है। वास्तव में हिन्दुत्व ने जिस प्रकार धर्म के गुण प्रधान स्वरूप को स्वीकार करके मानव धर्म के पक्ष को मजबूत किया है इसके जातिवादी ढाँचे ने इसे सार्वभौमिक रूप से स्थापित होने में उससे कहीं ज्यादा नुकसान पहुँचाया है। यह पूर्णतः नकारात्मक स्थिति है। आधुनिक समाज को साम्प्रदायिक संगठनवाद एवं जातीय वर्गीकरण का उपचार स्वीकार करना चाहिए। धर्म निश्चित (संगठनात्मक) पहचान का विषय नहीं होता है। यह व्यक्ति के उस आचरण का मार्गदर्शक है जो उसकी मूल स्वतन्त्रता का ह्रास किए बिना उसे समाज के प्रति उत्तरदायी बनाता है।

इतना कहकर विवेक अपना स्पष्टीकरण पूरा करता है। जिस पर सिमी अपना मत जाहिर करती है- मुझे इतना तो पता नहीं कि विवेक का चिन्तन किसी मंच से समाज के सम्मुख प्रस्तुत किया जाए तो समाज की उस विषय में क्या प्रतिक्रिया होगी। लेकिन इसके द्वारा प्रस्तुत कई तथ्य यह अवश्य सिद्ध करते हैं कि जो कारण व्यक्ति को समाज के प्रति उत्तरदायी होने से रोकते हैं, उन्हें निश्चित रूप से त्याग दिया जाना चाहिए। चाहे वे विचार हमे किन्हीं परिस्थितियों में कोई लाभ पहुँचाते हों! क्योंकि समाज स्वयं में ऐसा शक्तिशाली, सार्वभौमिक अधिष्ठान है जिसे विभिन्न वर्गवादी संगठनों की शक्ति से धकेलने की आवश्यकता नहीं होती है बल्कि व्यक्तियों द्वारा परस्पर सहयोग का विचार व्यक्ति-मात्र के मन में होना ही व्यक्तियों के समूह को समाज के रूप में प्रवृत्त कर देता है और इसे गति देता है। मैं विवेक द्वारा प्रस्तुत संगठन के मूल परिभाषित अर्थ को स्वीकार करती हूँ। ...सिमी इतना कहकर अपनी बात पूरी करती है। प्रोफेसर तमाम चर्चा पर विश्लेषणस्वरूप टिप्पणी करते है-तत्काल में इस विषय पर विवेक द्वारा प्रस्तुत किए गए स्पष्टीकरण के बाद मैं भी यह स्वीकार करता हूँ कि इस समय इस बारे में कुछ और कहने की आवश्यकता नहीं है। इस विषय को दृष्टिगोचर रखते हुए मै तो प्रकृति का धन्यवाद करता हूँ कि मेरे छात्रों ने इतने सहज चिन्तन के द्वारा यथार्थ व इतिहास के विभिन्न पहलुओं का सर्वेक्षण करते हुए धर्म की बहुत सन्तुलित परिभाषा प्रस्तुत की है। जो भूत, भविष्य और वर्तमान के बीच नीतिगत रूप से वैचारिक सन्तुलन बनाने में समाज का मार्गदर्शन कर सकती है। ये तथ्य इस दिशाहीन हो चुके आधुनिक युग में जीवन की प्राकृतिक स्वतन्त्रता का गरिमा पूर्ण लक्ष्य पानें का मार्ग प्रशस्त कर सकते हैं। ....मेरे बच्चो! मैं आज तुम्हारा धन्यवाद करता हूँ। प्रोफेसर अत्यन्त स्वच्छ मन से अपनी बात रखते हैं। उनके चुप होने पर क्लास रूम का वातावरण शांत हो जाता है। जिसे भंग करते हुए विवेक उनसे आग्रह पूर्वक कहता है- मैं आपको सीख देने का प्रयास करके मर्यादा भंग नहीं कर सकता हूँ सर! लेकिन मेरी आपसे यह प्रार्थना है कि हम सभी साथी आपके धन्यवाद के नहीं बल्कि आपके आशीर्वाद के पात्र हैं। यदि हम कृतज्ञों को आपका आशीष मिलता रहे तो हम सभी स्वयं को भाग्य का धनी मानेगें!

क्रमशः...